* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

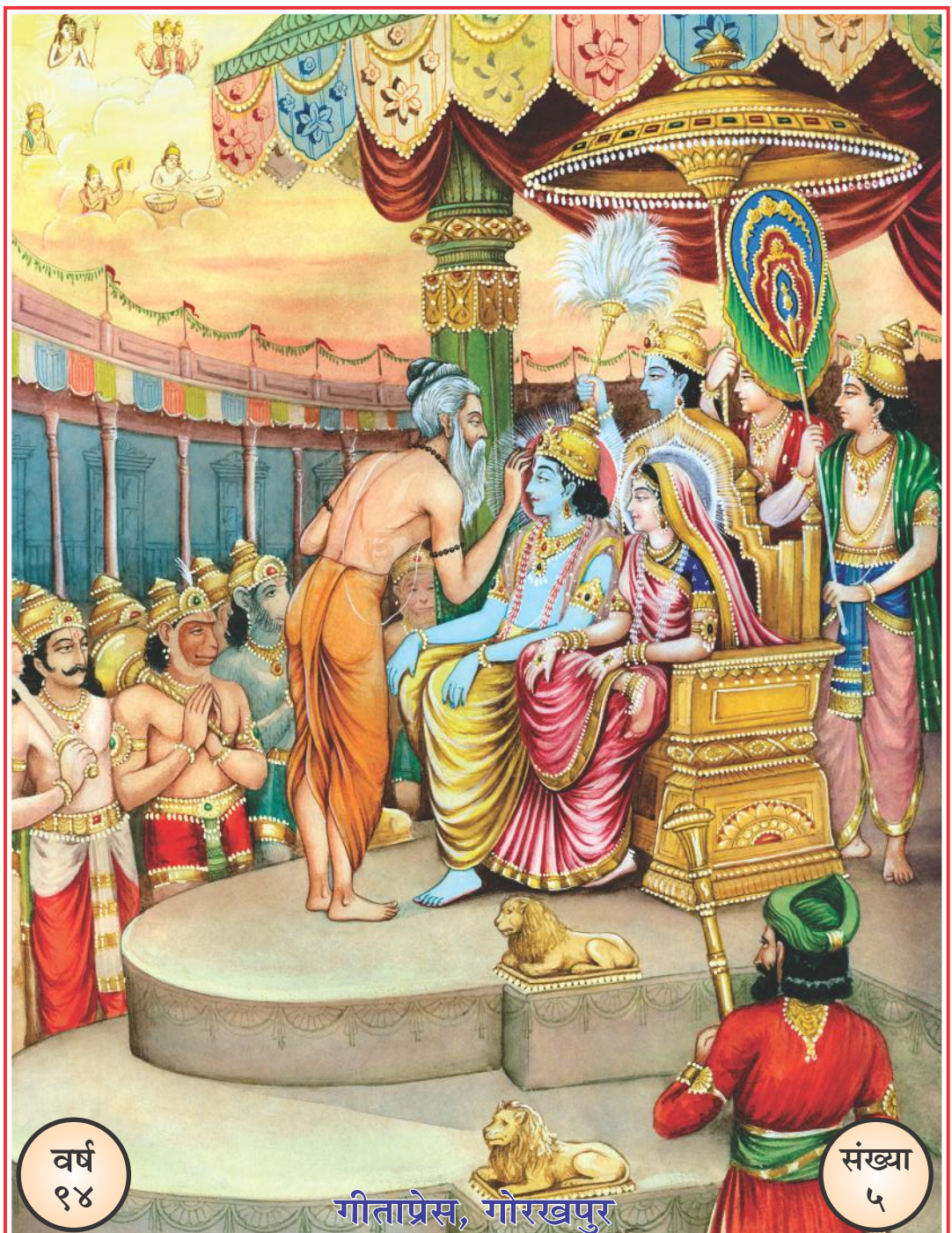

वर्ष ९४

संख्या ५

गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीरामराज्याभिषेक

श्रीराम-जानकीकी मनोरम झाँकी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

आख्यानकानि भुवि यानि कथाश्च या या यद्यत्प्रमेयमुचितं परिपेलवं वा।
दृष्टान्तदृष्टिकथनेन तदेति साधो प्राकाश्यमाशु भुवनं सितरश्मिनेव॥

वर्ष ९४ | गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, मई २०२० ई० | संख्या ५

पूर्ण संख्या ११२२

'जानकी-जीवनकी बलि जैहौं'

जानकी-जीवनकी बलि जैहौं।
चित कहै रामसीय-पद परिहरि अब न कहूँ चलि जैहौं॥
उपजी उर प्रतीति सपनेहुँ सुख, प्रभु-पद-बिमुख न पैहौं।
मन समेत या तनके बासिन्ह, इहै सिखावन दैहौं॥
श्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गैहौं।
रोकिहौं नयन बिलोकत औरहिं, सीस ईस ही नैहौं॥
नातो-नेह नाथसों करि सब नातो-नेह बहैहौं।
यह छर भार ताहि तुलसी जग जाको दास कहैहौं॥

[विनय-पत्रिका]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, मई २०२० ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- 'जानकी-जीवनकी बलि जैहौं'	३
२- **कल्याण**	५
३- श्रीरामराज्याभिषेक **[आवरणचित्र-परिचय]**	६
४- स्वाभाविक कर्मसे भगवत्प्राप्ति (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७
५- प्रेम-तत्त्व (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	१०
६- नाम-महिमा **[बोध-कथा]** (प्रो० श्रीभीमचन्द्रजी चटर्जी)	११
७- शरणागतिका यथार्थ स्वरूप (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१२
८- हृदयकी सरलतासे प्रभुका साक्षात्कार (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)	१३
९- भगवत्स्मरणकी महिमा **[साधकोंके प्रति]** (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१६
१०- पर्यावरण-संरक्षक वटसावित्री व्रत (श्रीसलिलजी पाण्डेय)	१८
११- नया दोस्त, पुराना दुश्मन **[बोध-कथा]** (वैद्य श्रीमोहनलालजी गुप्त)	२०
१२- महाशक्ति आदिपीठ विन्ध्यवासिनी **[तीर्थ-दर्शन]** (श्रीदीनानाथजी दुबे)	२३
१३- 'यह तो बड़ी ही अच्छी बात है' (श्रीसीतारामजी गुप्ता)	२७
१४- मन्दिर—भक्तिके द्वार (डॉ० श्रीगोपाल दामोदरजी फेगडे)	२८
१५- जीवनका लक्ष्य—प्रभुभक्ति एवं जनसेवा **[प्रेरक-प्रसंग]** (श्रीशिवकुमारजी गोयल)	३०
१६- वैवाहिक जीवनके प्रारम्भिक पल (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वर चैतन्यजी महाराज, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ)	३१
१७- गृहस्थाश्रम धन्य है!	३३
१८- आत्मज्ञानी महात्मा महर्षि रमण **[संत-चरित]** (श्रीरामलालजी श्रीवास्तव)	३४
१९- गोवंशकी दुर्दशा—कारण एवं निवारण **[गो-चिन्तन]** (श्रीराजीवजी गुप्ता)	४०
२०- **साधनोपयोगी पत्र**	४३
(१) एक ही परमेश्वरके अनेक स्वरूप हैं	४३
(२) केवल भगवान्पर भरोसा कीजिये	४४
२१- **व्रतोत्सव-पर्व** [ज्येष्ठमासके व्रत-पर्व]	४५
२२- **कृपानुभूति**	४६
गोमाताकी कृपासे फाँसी टल गयी	४६
२३- **पढ़ो, समझो और करो**	४७
(१) ईमानदार पादरी	४७
(२) आतिथ्य-निर्वाह	४७
(३) सच्चा धन	४८
(४) आयुर्वेदिक सलाह	४९
२४- **मनन करने योग्य**	५०
मृत्युपर वश नहीं	५०

चित्र-सूची

१- श्रीरामराज्याभिषेक (रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- श्रीराम-जानकीकी मनोरम झाँकी (रंगीन)	मुख-पृष्ठ
३- श्रीरामराज्याभिषेक (इकरंगा)	६
४- नन्दभद्र और सत्यव्रत (इकरंगा)	८
५- भगवान्की दिव्य झाँकीका आलोक प्राप्त करते चलते भक्त श्रीचैतन्यदेवजी (इकरंगा)	१३
६- भगवती विन्ध्यवासिनीदेवीका श्रीविग्रह (इकरंगा)	२३
७- आत्मज्ञानी महात्मा महर्षि रमण (इकरंगा)	३४

एकवर्षीय शुल्क
₹ २५०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पंचवर्षीय शुल्क
₹ १२५०

विदेशमें शुल्क Air Mail — **वार्षिक** US$ 50 (₹ 3,000), **पंचवर्षीय** US$ 250 (₹ 15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242 / 244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा **book.gitapress.org** पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—दु:ख पापका परिणाम है और सुख पुण्यका। अत: जब तुम्हें संसारमें दु:ख मिलता है, तुम्हारे भोग-सुखका नाश होता है, तब तुम्हारे पापका क्षय होता है, तुम एक भयानक कर्म-ऋणसे मुक्त होते हो; और जब तुम्हें संसारमें भोग-सुख प्राप्त होता है, तुम्हारे भौतिक दु:खका अभाव होता है, तब तुम्हारे पुण्यका क्षय होता है, तुम्हारे सत्कर्मकी पूँजी समाप्त होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि भोग-सुखकी प्राप्तिमें हानि है और सांसारिक दु:खकी प्राप्तिमें लाभ है। इसलिये जब भोग-सुख मिले, तब तो उसे इस प्रकार अनिच्छासे भोगो कि 'भोगे बिना छुटकारा नहीं, इसलिये बाध्य होकर भोगना पड़ता है, वस्तुत: है तो हानिकी चीज' और सांसारिक दु:ख मिले तब उसे चावसे—उत्साहसे भोगो—यह समझकर कि इसमें बड़ा लाभ है।

याद रखो—तुम्हारे रोने-चिल्लानेसे प्रारब्धका दु:ख-भोग मिट नहीं जायगा और बड़ी भारी चाह तथा चिन्ता करनेसे भोग-सुख मिल नहीं जायगा; पर यदि तुम दु:खमें सुख तथा लाभ-बुद्धि कर लोगे और सुखमें दु:ख तथा हानि-बुद्धि कर लोगे, जो यथार्थ है, तो तुम्हें सांसारिक दु:खोंकी प्राप्तिमें उद्वेग या क्लेश नहीं होगा और सुखोंकी स्पृहा या अभिलाषा नहीं होगी। अपने-आप आनेपर तुम दोनोंमें ही निर्विकार और प्रसन्न रहोगे।

याद रखो—भोग-सुखकी स्पृहा या इच्छा ही सारे दु:खोंका मूल है। इसीके कारण मनुष्य नाना प्रकारके दुष्कर्म करता है और इसीके कारण बार-बार निराश, उदास और कर्तव्यच्युत होकर आत्मविनाशके पथपर चलता है। यदि भोग-सुखकी हानियोंसे मनुष्य परिचित हो जाय और उनका स्मरण रखे तो वह भोग-सुखके लिये कभी ललचा नहीं सकता।

याद रखो—गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा है कि—'जितने भी ये इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे प्राप्त होनेवाले भोग हैं, वे सब विषय-विमोहित लोगोंको सुखरूप दीखनेपर भी वास्तवमें निश्चित दु:ख उत्पन्न करनेवाले ही हैं तथा अनित्य हैं। इसलिये कोई भी बुद्धि रखनेवाला मनुष्य इन भोग-सुखोंमें नहीं रमता।'

ये हि संस्पर्शजा भोगा दु:खयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्त: कौन्तेय न तेषु रमते बुध:॥

(५।२२)

याद रखो—सच्चा बुद्धिमान् तो वह है, जो इस रहस्यको समझ लेता है और सारे जगत्की उत्पत्तिका कारण और जगत्की सारी प्रवृत्तियोंका हेतु एकमात्र श्रीभगवान्को मानकर, भावपूर्ण हृदयसे भगवान्को भजता है।

याद रखो—भगवान्को भजनेवाला सच्चिदानन्दघन भगवान्को प्राप्त होता है और विषयोंका चिन्तन करनेवाला अनित्य एवं दु:खमय विषयोंको। भगवान्की प्राप्तिसे सारे दु:खोंका सदाके लिये अन्त होकर परम सुख-शान्तिकी नित्य अनुभूति होती है और विषयोंकी प्राप्तिसे विषयोंकी अपूर्णता, परिवर्तनशीलता, क्षणभंगुरता एवं भोग-पराधीनताको लेकर नित्य नये-नये दु:खोंकी आग बढ़ती रहती है, जो जन्म-जन्मान्तरतक भीषण रूपसे जलाती रहती है।

याद रखो—मनुष्यका शरीर दु:खोंसे सर्वथा छुटकारा दिलानेके लिये भगवान्ने कृपापूर्वक दिया है। इसे यदि नये-नये भयानक दु:खोंकी प्राप्ति करानेवाली विषयासक्ति, विषय-सेवा और भगवान्की विमुखतामें ही बिता दिया तो इससे बड़ी मूर्खता एवं हानि और क्या होगी? क्योंकि ऐसा करनेपर भगवत्कृपाकी अवहेलना होती है और मानव-जीवनके दुर्लभ सुअवसरका दुरुपयोग होता है। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

श्रीरामराज्याभिषेक

रावण-वधके अनन्तर श्रीरामने विभीषणको लंकाका राजा बनाया। विभीषणने श्रीरामसे हाथ जोड़कर कहा—'प्रभो! अब स्नान करके दिव्य वस्त्र, मालाएँ तथा अंगरागका सदुपयोग करें। उसके बाद सुन्दर व्यंजनोंको स्वीकारकर मुझे कुछ दिन अपने आतिथ्य-सत्कारका सौभाग्य प्रदान करें।'

भगवान् श्रीरामने कहा—'विभीषण! मेरे लिये इस समय सत्यका आश्रय लेनेवाले महाबाहु भरत बहुत कष्ट सह रहे हैं। उन धर्मपरायण भरतसे मिले बिना मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। मेरे पहुँचनेमें विलम्ब होनेपर वे अपने प्राणोंका त्याग कर देंगे। अत: तुम शीघ्र ही मुझे अयोध्या पहुँचानेकी व्यवस्था करो।'

भगवान् श्रीरामके इस प्रकार कहनेपर विभीषणने तत्काल कुबेरके पुष्पक विमानका आवाहन किया। विश्वकर्माद्वारा निर्मित वह विमान सुमेरु-शिखरके समान ऊँचा तथा विभिन्न रत्नोंसे सुसज्जित बड़े-बड़े कमरोंसे विभूषित था। वह मनके समान वेगवान् था। वानरोंको विभीषणके द्वारा रत्न और धनसे सम्मानित करानेके बाद श्रीराम लक्ष्मण और सीताके साथ उस विमानमें सवार हुए। तत्पश्चात् भगवान्‌के आदेशसे विभीषणके साथ सुग्रीव, हनुमान् और अंगदादि समस्त वानर वीर उस विमानपर बैठे। फिर भगवान् श्रीरामकी आज्ञा पाकर वह उत्तम विमान अयोध्याकी ओर उड़ चला। विमानसे सीताको विभिन्न स्थानोंका दर्शन कराते हुए भगवान् श्रीराम श्रीभरद्वाजके आश्रमपर उतरे और हनुमान्‌जीके द्वारा भरतको अपने शीघ्र अयोध्या पहुँचनेका संदेश भेज दिया। हनुमान्‌जीके श्रीरामका संदेश प्राप्तकर श्रीभरत सहसा आनन्दविभोर होकर पृथ्वीपर गिर पड़े और हर्षसे मूर्च्छित हो गये। क्षणभर बाद उन्होंने उठकर हनुमान्‌जीको जोरसे अपने अंकपाशमें भर लिया और कहा—'सौम्य! तुमने यह प्रिय संवाद सुनाकर मेरे तनमें नवीन प्राणोंका संचार कर दिया। मैं तुम्हारा सदैव ऋणी रहूँगा।' फिर भरतने अयोध्यामें श्रीरामके स्वागतका अभूतपूर्व प्रबन्ध किया। उसी समय पुष्पक-विमान श्रीरामको लेकर नीचे उतरा। भगवान् श्रीरामने अपने पैरोंमें पड़े हुए भरतजीको उठाकर गलेसे लगा लिया। फिर वे यथायोग्य सबसे मिले। चारों ओर आनन्दाश्रुओंकी वृष्टि होने लगी।

तदनन्तर भगवान् श्रीरामके राज्याभिषेकका वह दिव्य समय आया। ब्राह्मणोंसहित श्रीवसिष्ठजीने सभी तीर्थोंके जलसे श्रीरामका सीतासहित अभिषेक किया। उसके बाद श्रीवसिष्ठजीने ब्रह्माजीके द्वारा बनाये हुए सुन्दर किरीट तथा विभिन्न आभूषणोंसे श्रीरघुनाथजीको विभूषितकर उनका राजतिलक किया। वानरराज सुग्रीव, विभीषण तथा शत्रुघ्नजी श्रीरामके पास खड़े होकर धवल चँवर डुलाने लगे। इस पवित्र अवसरपर वायुदेवने सुवर्णमय कमलोंकी बनी मालाएँ श्रीरामको भेंट कीं। श्रीरामके अभिषेकके साथ देवगन्धर्व उनका गुणगान करने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। भगवान् श्रीरामने ब्राह्मणोंको असंख्य गायोंके साथ विभिन्न प्रकारके रत्न दानमें दिये। श्रीसीतारामके पवित्र जयघोषसे धरती और आकाश गूँज उठे। उस समय पृथ्वी हरी-भरी हो गयी तथा वृक्ष फलोंसे लद गये। फिर श्रीरामके शासनकालमें चिरस्मरणीय राम-राज्यकी स्थापना हुई, जिसे हम आज भी याद करते हैं।

स्वाभाविक कर्मसे भगवत्प्राप्ति

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

नन्दभद्र नामक एक वैश्य थे। वे साक्षात् धर्मराजकी भाँति समस्त धर्मोंके विशेषज्ञ थे। धर्मोंके विषयमें जो कुछ कहा गया है, उसमें कोई भी ऐसी बात नहीं थी, जो नन्दभद्रको ज्ञात न हो। वे सबके सुहृद् थे और सदा सभीके हितसाधनमें संलग्न रहते थे। उन्होंने मन, वाणी और क्रियाद्वारा इस परोपकार-धर्मका ही आश्रय ले रखा था। नन्दभद्रने इस विशाल धर्म-समुद्रका सब ओरसे मन्थन करके सारतत्त्व ग्रहण किया था।

वे जीविकाके लिये न्याययुक्त वाणिज्यको श्रेष्ठ मानते थे और उसीको अपनाये हुए थे। उन्होंने थोड़ेसे काठ और घास-फूससे अपने रहनेके लिये घर बना रखा था और सब लोगोंकी भलाईके लिये तथा शरीरनिर्वाहके लिये वे कम मुनाफा लेकर व्यापार करते थे। उनके क्रय-विक्रयकी वस्तुओंमें मदिरा सर्वथा वर्जित थी। उनके यहाँ ग्राहकोंके साथ भेदभाव न करके समताका व्यवहार किया जाता था। झूठ और कपटका तो वहाँ नाम भी न था। वस्तुओंके आदान-प्रदानमें वे सबके साथ समतापूर्ण बर्ताव करते थे। बिना छल-कपटके दूसरोंसे खरीदकी वस्तु लेकर उसे बिना किसी धोखाधड़ीके सब लोगोंको समानभावसे बेचते थे, यही उनका श्रेष्ठ व्रत था।

कुछ लोग यज्ञकी प्रशंसा करते हैं, परंतु नन्दभद्र सर्वथा ऐसा नहीं मानते थे। वे श्रद्धापूर्वक देवपूजन, नमस्कार, स्तुति, नैवेद्य-निवेदन आदि यज्ञकी सारभूत बातोंका सदा ही पालन करते थे। कोई-कोई संन्यासकी प्रशंसा करते हैं; परंतु नन्दभद्र उनसे भी सर्वथा सहमत नहीं थे। उनका कहना था कि जो विषयोंका बाहरसे त्याग करके मनसे उनका चिन्तन करता है, वह पुरुष गृहस्थ और संन्याससे अथवा इहलोक और परलोक—दोनों ओरसे भ्रष्ट होकर फटे हुए बादलकी भाँति नष्ट हो जाता है। संन्यासका जो सारभूत उत्तम तत्त्व है, उसका आदर तो नन्दभद्र भी करते थे।

वे किसीके कर्मोंकी निन्दा या प्रशंसा नहीं करते थे। किसीके साथ न उनका द्वेष था, न राग; न अनुरोध था, न विरोध। पत्थर और सुवर्णको वे समान समझते तथा अपनी निन्दा और स्तुतिमें भी समान भाव रखते थे। वे स्वभावसे ही धीर थे। सम्पूर्ण भूतोंसे निर्भय रहते थे। अपनी आकृति ऐसी बनाये रखते थे, मानो अन्धे और बहरे हों; अर्थात् वे दूसरोंके दोषोंको न देखते और न सुनते। कर्मोंके फलकी उन्हें कोई आकांक्षा नहीं थी। अतः प्रत्येक कर्म उनके लिये भगवान् सदाशिवकी आराधनाका अंग बन जाता था। इसी कारण वे धर्मका अनुष्ठान तो चाहते और करते थे, परंतु उसमें कोई स्वार्थ नहीं रखते थे। नन्दभद्रने भलीभाँति विचार करके इस मोक्षप्राप्तिके साररूप धर्मको ग्रहण किया था।

कुछ लोग खेतीकी प्रशंसा करते हैं; परंतु नन्दभद्रने उसके भी सारभागको ही अपनाया था। खेतीकी आयमेंसे तीसवें भागका त्याग करना चाहिये—उसे धर्मके कार्यमें लगा देना चाहिये। बूढ़े पशुओंका भी स्वयं ही पालन-पोषण करना चाहिये। जो ऐसा करे, वही श्रेष्ठ किसान है। नन्दभद्रने इसीको खेतीका सार मानकर इसका आदर किया था।

प्रतिदिन अपनी शक्तिके अनुसार देवताओं, पितरों, मनुष्यों (अतिथियों), ब्राह्मणों तथा पशु-पक्षी, कीट-पतंगादि भूतोंके लिये अन्न देना चाहिये। सदा इन सबको देकर ही स्वयं भोजन करना उचित है। यह उनका मत था।

कुछ लोग ऐश्वर्यकी प्रशंसा करते हैं, परंतु नन्दभद्र उसे प्रशंसाके योग्य नहीं मानते थे; क्योंकि ऐश्वर्यशाली पुरुष अपनेको चिरस्थायी समझकर दूसरोंके साथ दुर्व्यवहार करते हैं। वास्तवमें जो धनके मदसे उन्मत्त होता है, वह पतित होकर विवेक खो बैठता है। अतः सम्पूर्ण प्राणियोंको अपना स्वरूप मानकर उनके प्रति अपने ही जैसा बर्ताव करना चाहिये।

जिसकी सर्वत्र आत्मदृष्टि है, वह ऐश्वर्यसे मतवाला नहीं होता। इसलिये नन्दभद्रने ऐश्वर्यका भी सार निकाल लिया था। वे अपनी शक्तिके अनुसार सभी प्राणियोंकी सेवा करते थे, किसीकी भी सेवासे विमुख नहीं होते थे।

इस आचरणसे रहनेवाले साधुशिरोमणि नन्दभद्रके सद्व्यवहारकी देवतालोग भी स्पृहा रखते थे।

इसी स्थानमें एक शूद्र भी रहता था, जो नन्दभद्रका पड़ोसी था। उसका नाम तो था सत्यव्रत, किंतु वह बड़ा भारी नास्तिक और दुराचारी था। उसकी इच्छा थी, यदि इनका कोई छिद्र देख पाऊँ तो इन्हें धर्मसे गिरा दूँ। नन्दभद्रके वृद्धावस्थामें एक पुत्र हुआ, किंतु वह चल बसा। इसे प्रारब्धका फल मानकर उन महामति वैश्यने शोक नहीं किया। तदनन्तर, नन्दभद्रकी प्यारी पत्नी कनका, जो पतिव्रता अरुन्धतीकी भाँति साध्वी स्त्रियोंके समस्त सद्गुणोंसे विभूषित तथा गृहस्थधर्मकी साक्षात् मूर्ति थी, सहसा मृत्युको प्राप्त हो गयी। सत्यव्रतको बहुत दिनोंके बाद बड़ी प्रसन्नता हुई। 'बड़े कष्टकी बात हुई,' ऐसा कहता हुआ वह शीघ्र ही नन्दभद्रके पास आया

और मित्रकी भाँति मिलकर उससे बोला—'नन्दभद्र! यदि तुम-जैसे धर्मात्माको भी ऐसा फल मिला तो इससे मेरे मनमें यही आता है कि यह धर्म-कर्म व्यर्थ ही है। शास्त्रोंके जालसे पृथक् हो मिथ्यावादोंको छोड़कर केवल सत्य कहना ही मेरा व्रत है। इसलिये मैं सत्यव्रत कहलाता हूँ। मैं तुमसे सच्ची बात कहूँगा। जबसे तुम पत्थर (शिवलिंग) पूजनेमें लग गये, तबसे तुम्हें कोई अच्छा फल मिला हो, ऐसा मैं नहीं देखता। तुम्हारे एक ही तो पुत्र था, वह भी नष्ट हो गया। पतिव्रता पत्नी थी, सो भी संसारसे चल बसी। भैया! देवता कहाँ हैं? सब मिथ्या है। यदि होते तो दिखायी न देते? यह सब कुछ कपटी ब्राह्मणोंकी झूठी कल्पना है। संसारकी सृष्टि और संहार—ये दोनों बातें झूठी हैं। यह विश्व स्वभावसे ही सदा वर्तमान रहता है, ये सूर्य आदि ग्रह स्वभावसे ही आकाशमें विचरण करते हैं, स्वभावसे ही पृथ्वी स्थिर है, स्वभावसे ही समुद्र अपनी मर्यादामें स्थित है, स्वभावसे ही ये बहुतेरे जीव उत्पन्न होते हैं, स्वभावसे ही यह समस्त जगत् प्रकाशित होता है। इसका कोई प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाला कर्ता (ईश्वर) नहीं है।

धूर्तलोग इस मनुष्ययोनिको भी सबसे श्रेष्ठ बतलाते हैं, किंतु मनुष्ययोनिसे बढ़कर दूसरी किसी योनिमें कष्ट नहीं है। ये पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े बिना किसी बन्धनके सुखपूर्वक विहार करते हैं, इनकी योनि अत्यन्त दुर्लभ है। मनुष्योंकी अपेक्षा अन्य योनियोंमें उत्पन्न होनेवाले सभी जीव धन्य हैं। इसलिये नन्दभद्र! तुम मिथ्याधर्मका परित्याग करके मौजसे खाओ, पीओ, खेलो और भोग भोगो। पृथ्वीपर बस, यही सत्य है।'

सत्यव्रतके इन वाक्योंसे, जो अशुभकर, अयुक्ति-संगत तथा असमंजस (दोषपूर्ण) थे, महाबुद्धिमान् नन्दभद्र तनिक भी विचलित नहीं हुए। वे क्षोभरहित समुद्रकी भाँति गम्भीर थे। उन्होंने हँसते हुए उत्तर दिया—'सत्यव्रतजी! आपने जो यह कहा कि धर्मात्मा मनुष्य सदा दुःखके भागी होते हैं, वह झूठ है। हम तो पापियोंपर भी बहुतेरे दुःख आते देखते हैं। संसारबन्धनजनित क्लेश तथा पुत्र और स्त्री आदिकी मृत्युके दुःख पापी मनुष्योंके यहाँ भी देखे जाते हैं। इसलिये मेरे मतमें धर्म ही श्रेष्ठ है।'

'दूसरी बात जो आप यह कहते हैं कि इस संसारका कारण कोई महान् ईश्वर नहीं है, यह भी बच्चोंकी-सी बात है। क्या प्रजा बिना राजाके रह सकती है? इसके सिवा आप जो यह कहते हैं कि तुम झूठे ही पत्थरके लिंगकी पूजा करते हो, इसके उत्तरमें मुझे

इतना ही निवेदन करना है कि आप शिवलिंगकी महिमाको नहीं जानते हैं। ठीक उसी तरह, जैसे अन्धा सूर्यके स्वरूपको नहीं जानता। भगवान् श्रीरामने युद्धमें रावणको मारकर समुद्रके किनारे श्रीरामेश्वर लिंगकी स्थापना की है, क्या वह झूठा ही है?'

'आप जो यह कहते हैं कि देवता नहीं हैं और यदि हैं तो कहीं भी दिखायी क्यों नहीं देते? आपके इस प्रश्नसे मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। जैसे दरिद्रलोग द्वार-द्वार जाकर भीख माँगते हैं, उसी प्रकार क्या देवता भी आपके पास आकर याचना करें? यदि आपके मतमें सब पदार्थ स्वभावसे ही सिद्ध होते हैं तो बताइये, कर्ताके बिना भोजन क्यों नहीं तैयार हो जाता? इसलिये जो भी निर्माणकार्य है, वह अवश्य किसी-न-किसी कर्ताका ही है। और आपने जो यह कहा है कि ये पशु आदि प्राणी ही सुखी तथा धन्य हैं, यह बात आपके सिवा और किसीने न तो कही है और न सुनी ही है। तमोगुणी और अनेक इन्द्रियोंसे रहित जो पशु-पक्षी आदि प्राणी हैं तथा उनके जो कष्ट हैं, वे भी यदि स्पृहणीय और धन्य हैं तो सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे युक्त मनुष्य श्रेष्ठ और धन्य क्यों नहीं? मैं तो समझता हूँ कि आपका जो यह अद्‌भुत सत्यव्रत है, इसे आपने नरक जानेके लिये ही संग्रह किया है। आपने पहले ही जो आडम्बरपूर्ण भूमिका बाँधकर अपने ज्ञानका परिचय देना आरम्भ किया है, उसीमें आपके इन वचनोंकी सारहीनता व्यक्त हो गयी है। आपने प्रतिज्ञा तो की थी और कुछ कहनेके लिये, परंतु कह डाला कुछ और ही। इसमें आपका कोई दोष नहीं है, सब दोष मेरा ही है, जो मैं आपकी बात सुनता हूँ। नास्तिक, सर्प और विष—इनका तो यह स्वभाव ही है कि ये दूसरेको मोहित करते हैं। प्रतिदिन साधु-पुरुषोंका संग करना धर्मका कारण है। इसलिये विद्वान्, वृद्ध, शुद्ध भाववाले तपस्वी तथा शान्तिपरायण सन्त-महात्माओंके साथ सम्पर्क स्थापित करना चाहिये। दुष्ट पुरुषोंके दर्शन, स्पर्श, वार्तालाप, एक आसनपर बैठने तथा एक साथ भोजन करनेसे धार्मिक आचार नष्ट होते हैं। नीचोंके संगसे पुरुषोंकी बुद्धि नष्ट होती है, मध्यम श्रेणीके लोगोंके साथ उठने-बैठनेसे बुद्धि मध्यम स्थितिको प्राप्त होती है और श्रेष्ठ पुरुषोंके साथ समागम होनेसे बुद्धि श्रेष्ठ हो जाती है। इस धर्मका स्मरण करके मैं पुनः आपसे मिलनेकी इच्छा नहीं रखता, क्योंकि आप सदा ब्राह्मण आदिकोंकी ही निन्दा करते हैं। वेद प्रमाण हैं, स्मृतियाँ प्रमाण हैं तथा धर्म और अर्थसे युक्त वचन प्रमाण हैं; परंतु जिसकी दृष्टिमें ये तीनों ही प्रमाण नहीं हैं, उसकी बातको कौन प्रमाण मानेगा?'

इस प्रकार कहकर महात्मा नन्दभद्र वहाँसे उठकर चले गये। वे सदा भगवान् शिवकी उपासनामें लगे रहते और इस प्रकार भगवान् शिवकी भक्ति करते हुए वे परम पदको प्राप्त हो गये।

इस भक्तिसहित निष्काम कर्मके विषयमें शास्त्रका विधिवाक्य भी है। श्रीभगवान् स्वयं गीतामें कहते हैं—

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु॥
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(१८। ४५-४६)

'अपने-अपने स्वाभाविक कर्मोंमें तत्परतासे लगा हुआ मनुष्य भगवत्प्राप्तिरूप परम सिद्धिको प्राप्त हो जाता है। अपने स्वाभाविक कर्मोंमें लगा हुआ मनुष्य जिस प्रकारसे कर्म करके परम सिद्धिको प्राप्त होता है, उस विधिको तू सुन।'

'जिस परमेश्वरसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा पूजा करके मनुष्य परम सिद्धिको प्राप्त हो जाता है।'

अतएव सभी मनुष्योंको परमात्माकी शरण होकर अपने-अपने वर्ण-आश्रमके अनुसार जगज्जनार्दनकी सेवा करके परमात्माकी प्राप्तिके लिये जीतोड़ प्रयत्न करना चाहिये।

प्रेम-तत्त्व

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

कामनासे युक्त होकर जो ईश्वरका भजन-चिन्तन किया जाता है, वह कामनाकी पूर्ति होने या न होनेपर ईश्वरसे विमुखता उत्पन्न करता है। जैसे बच्चा माँसे पैसा माँगता है, जबतक माँ पैसा नहीं देती, तबतक तो वह माँकी ओर देखता रहता है; किंतु पैसा मिलते ही माँसे विमुख होकर भाग जाता है। यही दशा सकाम साधककी होती है।

इसी प्रकार जो भक्ति भगवान्‌के गुण, प्रभाव और ऐश्वर्यको लेकर की जाती है, वह भी वास्तविक नहीं है। वह साधन-भक्ति है। प्रेम तो वह है, जो ईश्वरके साथ सम्बन्धसे होता है, जो उनको अपना माननेसे होता है। वे चाहे जैसे हों, मुझसे प्रेम करें या न करें, दयालु हों चाहे निष्ठुर हों, परंतु मेरे हैं—इस भावसे ही सच्चा प्रेम होता है। जैसे विवाहके पहले सगाई करते समय देखा जाता है कि लड़का कैसा है, परंतु जब सम्बन्ध हो जाता है, तब तो वह अपना हो जाता है, वह चाहे जैसा हो, सती स्त्रीका तो वही सर्वस्व है। उसने तो उसपर अपने आपको निछावर कर दिया है। उसकी दृष्टि उसके गुण-दोषोंकी ओर नहीं जाती।

जो साधक भगवान्‌को अपना लेता है, उनसे प्रेम करना चाहता है, वह कैसा है—महान् दुराचारी है या सदाचारी, उच्च वर्णका है या नीच वर्णका—इसका भगवान् जरा भी विचार नहीं करते। जो उनको चाहता है, उनके साथ प्रेम करना चाहता है, वे उससे प्रेम करनेके लिये सदैव उत्सुक रहते हैं। साधक उनसे जितना प्रेम करता है, वे उससे कितना अधिक प्रेम करते हैं—इसका वाणीद्वारा कोई वर्णन नहीं कर सकता। भगवान्‌की इस महिमाको समझनेवाला साधक उनपर अपनेको न्योछावर कर देनेके सिवा और करेगा ही क्या?

यदि प्रेमकी इच्छा रहते हुए भी सचमुच प्रेम प्राप्त नहीं हुआ तो उसके न मिलनेकी गहरी वेदना होनी चाहिये। वह वेदना अवश्य ही प्रेम चाहनेवालेको प्रेमकी प्राप्ति करा देगी। यदि प्रेमकी चाह है परंतु उसके प्राप्त न होनेकी तीव्र वेदना नहीं है तो साधकको समझना चाहिये कि मेरे जीवनमें किसी-न-किसी प्रकारका अन्य रस है, जो मुझे प्रेमसे वंचित करनेवाला है। विचार करनेपर या तो किसी प्रकारके सद्‌गुणका या किसी प्रकारके सदाचारका रस दिखलायी देगा; क्योंकि प्रेम चाहनेवालेके मनमें भोगवासना और भोगोंका रस तो पहले ही मिट जाना चाहिये। जबतक भोगोंमें रस प्रतीत होता है, तबतक तो प्रेमकी सच्ची याद ही नहीं होती।

भगवत्प्रेमका मूल्य सद्‌गुण या सदाचार नहीं है। अतः उस प्रेममें प्रत्येक मनुष्यका अधिकार है। पतित-से-पतित भी भगवान्‌का प्रेम प्राप्त कर सकता है; क्योंकि जिस प्रकार भक्तवत्सल होनेके नाते श्रीहरि अपने भक्तसे स्नेह करते हैं, वैसे ही वे पतितपावन प्रभु अधमोद्धारक और दीनबन्धु भी तो हैं ही। अतः दीन, हीन, पतितसे भी वे प्यार करते हैं। उसे भी वे अपने प्रेमका पात्र समझते हैं। वे मनुष्यसे किसी सौन्दर्य या गुणके कारण प्रेम नहीं करते; क्योंकि अनन्त दिव्य सौन्दर्य, अनन्त दिव्य सद्‌गुणोंके वे केन्द्र हैं। किसी ऐश्वर्यके कारण प्रभु प्रेम करते हों, ऐसी बात भी नहीं है; क्योंकि उनके समान ऐश्वर्य किसीके पास है ही नहीं तो उनसे अधिक ऐश्वर्य हो ही कैसे सकता है? वे तो एकमात्र उसीसे प्रेम करते हैं, जो उनपर विश्वास करके यह मान लेता है कि मैं उनका हूँ, वे मेरे हैं। बस, इसके अतिरिक्त भगवान् और कुछ नहीं चाहते, इसलिये प्रत्येक मनुष्य उनके प्रेमका अधिकारी है।

प्रेम प्रदान करना या न करना प्रभुके हाथकी बात है। वे जब चाहें, जिसको चाहें, अपना प्रेम प्रदान करें अथवा न करें, इसमें साधकके वशकी बात नहीं है; किंतु उनका प्रेम न मिलनेसे व्याकुलता और बेचैनी तो होनी ही चाहिये। छोटी-से-छोटी चाह पूरी न होनेसे मनुष्य दुखी हो जाता है, व्याकुल हो जाता है। फिर जिसको भगवान्‌के प्रेमकी चाह है और प्रेम मिलता नहीं, वह चैनसे कैसे रह सकता है? उसकी वेदनाको किसी भी भोगका, सद्‌गुणका और सदाचारका अथवा सद्‌गतिका सुख भी कैसे शान्त कर सकता है?

अतः जिस साधकको गोपीभाव प्राप्त करना हो

और उनकी लीलामें प्रवेश करके गोपी-प्रेमकी बात समझनी हो, उसे चाहिये कि देहभावसे उत्पन्न होनेवाली सम्पूर्ण भोगोंकी वासनाका त्याग कर दे; क्योंकि जबतक देहभाव रहता है अर्थात् मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ—ऐसा भाव होता है, तबतक गोपी-चरित्र सुनने और समझनेका अधिकार नहीं प्राप्त होता। फिर गोपी-प्रेम क्या है—यह तो कोई समझ ही कैसे सकता है?

जब भगवान् श्यामसुन्दरके प्रेमकी लालसा समस्त भोग-वासनाओंको समाप्तकर सबल हो जाती है, तब साधकका व्रजमें प्रवेश होता है। उसके पहले तो व्रजमें प्रवेश होना ही दुष्कर है। यह उस व्रजकी बात नहीं है, जहाँ लोग टिकट लेकर जाते हैं। यह तो वह व्रज है, जो प्रकृतिका कार्य नहीं, जहाँकी कोई भी वस्तु भौतिक नहीं और जिसका निर्माण दिव्य प्रेमकी धातुसे हुआ है। जहाँकी भूमि, ग्वाल-बाल, गोपियाँ, गायें और लता-पत्ता आदि सब-के-सब चिन्मय हैं। जहाँ जड़ता और भौतिक भावकी गन्ध भी नहीं है, उस व्रजमें प्रवेश हो जानेके बाद भी गोपीभावकी प्राप्ति बहुत दूरकी बात है। दासभाव, सख्यभाव और वात्सल्यभावके बाद कहीं गोपी-भावकी उपलब्धि होती है। फिर साधारण मनुष्य उस गोपी-प्रेमकी बात कैसे समझ और कह सकते हैं।

जबतक देहभाव रहता है, तभीतक भोगवासना और अनेक प्रकारके दोष रहते हैं और तभीतक दोषोंका नाश करके चित्तशुद्धिके लिये साधन करना रहता है। चित्तका सर्वथा शुद्ध हो जाना और सब प्रकारसे असत्का संग छूट जाना ही सच्चा व्रज-प्रवेश है।

अत: जिस साधकको गोपी-प्रेम प्राप्त करना हो, उसे चाहिये कि पहले मुक्तिके आनन्दतकका लोभ छोड़कर व्रजमें प्रवेशका अधिकार प्राप्त करे। तत्पश्चात् भगवान्की कृपापर निर्भर होकर गोपी-भावको प्राप्त करे।

नाम-महिमा

मैं भगवन्नाम-जपकी महिमाको प्रकट करनेवाली एक आँखों देखी घटनाका वर्णन करता हूँ, जो हमारी श्रद्धा, भक्ति और विश्वासको भी बढ़ानेवाली वाली है—

एक वृद्ध ब्राह्मणको हत्याके अपराधमें फाँसीकी सजा हुई थी। वह बनारस जेलमें अपनी फाँसीकी कोठरीमें बैठा अपने अन्तिम दिन गिन रहा था। जिस गाँवमें ब्राह्मण रहता था, उसमें एक खून हुआ था। पुलिसने चार गवाहोंको इस ब्राह्मणके विरुद्ध झूठी गवाही देनेको राजी किया। इससे उसे फाँसीकी सजा मिली। इन गवाहोंको सिखाते समय पुलिसने उन्हें वचन दिया था कि सेशन अदालतसे ब्राह्मणको हलकी सजा मिलेगी, पर बादमें वह छोड़ दिया जायगा। पुलिसने गाँववालोंपर दबाव डालकर और उनको धमकाकर गवाह बनाया था और वे अदालतमें पेश हुए थे। जब ब्राह्मणको मालूम हुआ कि उसे फाँसीकी सजा हुई है तो उसी समयसे वह मृत्युतक भगवन्नामोच्चारणका निश्चयकर रामनाम जपने लगा। जेलमें भी वह केवल रामनाम जपता रहता। जेलके अन्य सामान्य कैदियोंने उसे अपने उपहास और विनोदका लक्ष्य बनाया, पर वे जपको खण्डित करनेमें असमर्थ रहे। इसके पूर्व मैंने कभी किसीको इतनी तन्मयतासे भगवान् रामका नाम जपते नहीं देखा था। इस प्रकार दिन बिताते हुए वह हाईकोर्टके निर्णयकी प्रतीक्षा कर रहा था।

एक दिन जेलमें बड़ा तहलका मचा। पता लगानेपर मुझे मालूम हुआ कि जब उन गवाहोंको पता लगा कि ब्राह्मणको फाँसीकी सजा हुई है, तब वे अपने कुटुम्बके सम्पूर्ण आदमियोंके साथ सेशन जजके पास पहुँचे और उसको सारी कहानी ठीक-ठीक सुना दी कि किस प्रकार पुलिसने उनको झूठी गवाही देनेपर राजी किया, जिसके फलस्वरूप ब्राह्मणको फाँसीकी सजा हुई। उन लोगोंने प्रार्थना की कि 'ब्राह्मणके बदले वे अपने सारे कुटुम्बके साथ फाँसीपर चढ़ा दिये जायँ।' विज्ञ जजने परिस्थितिकी गुरुता समझकर ब्राह्मणकी सजा हटा दी और झूठी गवाही देनेके जुर्ममें उन गवाहोंको दो-दो वर्षकी कड़ी सजा दी। गवाह तो ब्राह्मणकी जान बचानेके लिये अपनी जान देनेतकको तैयार थे, इसलिये उन्होंने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक यह दण्ड स्वीकार किया। इसी कारण जेलमें तहलका मचा हुआ था। 'रामनाम' का यह प्रभाव देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। —प्रो० श्रीभीमचन्द्रजी चटर्जी

शरणागतिका यथार्थ स्वरूप

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

इहलौकिक और पारलौकिक दु:खोंसे छुटकारा पाकर नित्य अखण्ड परमानन्दकी प्राप्तिके लिये भगवान्‌की शरणागति ही मुख्य उपाय है। जो एक बार सर्वभावसे अपनेको परमात्माके चरणोंमें अर्पण कर देता है, वह सदाके लिये निर्भय, निश्चिन्त और परम सुखी हो जाता है। उसके योग-क्षेमका समस्त भार भगवान् वहन करते हैं और स्वयं केवट बनकर उसकी जीवन-तरणीको भीषण संसार-सागरकी काम-क्रोधादि उत्ताल तरंगोंसे बचाकर सुरक्षितरूपसे परमानन्दमय धाममें पहुँचा देते हैं, उसे किसी प्रकारकी चिन्ता या चाह करनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती; परंतु यह शरणागति क्या वस्तु है और कैसे सिद्ध होती है, यहाँ इसीपर विचार करना है।

यह शरणागति केवल शब्दोंसे नहीं सिद्ध होती। अथवा समझकर चुपचाप निकम्मा हो बैठनेका नाम भी शरणागति नहीं है कि 'मैं तो उन प्रभुकी शरण हो गया, मुझे अब किसी कामके लिये हाथ-पैर हिलाने या समझने-सोचनेसे क्या प्रयोजन है ? वे आप ही सब ठीक कर देंगे, मेरा तो अब कोई कर्तव्य नहीं है।' यदि यही शरणागति होती तो प्रत्येक आलसी और तमोऽभिभूत प्रमादी मनुष्य ऐसा कह सकता है।

शरणागत भक्त तो अपने 'अहं' को और उस 'अहं' से सम्बन्ध रखनेवाले प्रत्येक सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भावको परमात्माके अर्पण कर देता है, फिर उसका जीवन परमात्माकी रुचिका जीवन, उसका मन परमात्माकी रुचिका मन, उसकी बुद्धि परमात्माकी बुद्धि बन जाती है और उसकी सारी क्रियाएँ परमात्माके मनोऽनुकूल होने लगती हैं। अबतक तो वह यही समझता था कि यह संसार उसका है और वह इसमें काम करनेवाला है, शरणागत होनेके बाद वह समझने लगता है—सारा संसार परमात्माका है, स्थूल-से-स्थूल एवं सूक्ष्म-से-सूक्ष्म सभी पदार्थ उनके हैं और उनमें जो कुछ क्रियाएँ होती हुई दृष्टिगोचर होती हैं, वे सब उन्हींकी दिव्य लीलाएँ हैं, व्यक्ति तो निमित्तमात्र है, जो वास्तवमें उन्हींका है और वे परमात्मा अपने ही एक पदार्थको निमित्त बनाकर अपनी इच्छाके अनुसार अपने-आपमें ही अपने विनोदके लिये लीला कर रहे हैं। प्रत्येक पदार्थ उन्हींकी सामग्री है। उनकी कोई भी सामग्री उनसे भिन्न वस्तु नहीं है, वे इन सामग्रियोंके रूपमें अपने आपको प्रकाशित कर रहे हैं। खेल, खिलाड़ी और खिलौने—तीनों ही मूलमें और क्रियामें भी एक ही हैं, व्यावहारिक स्थूलदृष्टिसे भेद प्रतीत हो रहा है। इस प्रकार 'अहं' और 'मम' का तथा मन, बुद्धि, इन्द्रिय, शरीरका समस्त प्रपंचसहित सर्वभावसे समर्पण ही यथार्थ शरणागतिका स्वरूप है।

शरणागतिकी इस स्थितिको प्राप्त करनेके लिये क्रमश: शरीर, वाणी, मन, बुद्धि एवं अपनेको परमात्माके अर्पण करना पड़ता है। शरणागतिकी पहचान यही है कि साधक ज्यों-ज्यों शरणागतिके सुख-शान्तिमय, सर्वतापहर, शीतल प्रदेशमें प्रवेश करता है, वैसे-वैसे ही उसमें निर्भयता और निश्चिन्तताकी भी अभिवृद्धि होती जाती है।

जिस प्रकार स्नेहमयी जननीकी गोदमें जाकर शिशु निर्भय और निश्चिन्त हो जाता है, इसी तरह सर्व-सच्चिदानन्दरूपा इस स्नेह-सुधा-समुद्रमयी जगज्जननीकी महामहिमामयी क्रोड़में आश्रय पाकर साधक भी निर्भय और निश्चिन्त हो जाता है। उसे फिर कहीं कोई भय नहीं रहता और किसी भी वस्तु या गति-विशेषकी चाह नहीं रहती। प्रभुके हाथोंमें अपनेको सौंप देनेके बाद भय, चिन्ता और चाह कैसी ?

इस शरणागतिके साधनमें साधकको चार बातोंपर विशेष ध्यान रखना पड़ता है, यद्यपि आगे चलकर ये चारों उसमें स्वाभाविक ही पायी जाती हैं—

१-जिन परमात्माकी शरण ग्रहण की है, उनका निरन्तर स्मरण करना।

२-उनकी इच्छा या आज्ञाके अनुसार जीवन बना लेना।

३-वे जो कुछ भी विधान करें, उसीमें परम प्रसन्न रहना अर्थात् उनकी कृपासे प्राप्त होनेवाली प्रतिकूल-से-प्रतिकूल परिस्थितिमें भी उनकी मंगलमयी इच्छा समझकर अनुकूलताका अनुभव करना।

४-किसी भी पदार्थकी चाह न रखना।

ये भाव जितने-जितने बढ़ें, साधक उतना ही परमात्माकी शरणमें अग्रसर हो रहा है, ऐसा समझना चाहिये।

हृदयकी सरलतासे प्रभुका साक्षात्कार

(पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

मनुष्यका हृदय ज्यों ही निर्मल, विशुद्ध, सभी छल-प्रपंचोंसे मुक्त, परम सरल एवं शान्त अवस्थाको प्राप्त होता है, त्यों ही अकारण-करुण, अशरण-शरण, करुणा-वरुणालय, कल्याणैकतान, समस्त कल्याण-गुणामृतोदधि प्रभुकी अनुपम झाँकी ज्ञाननेत्रोंसे दीखने लग जाती है, या यों कहिये कि उस समय उनके अतिरिक्त दूसरा कुछ दीखता ही नहीं। पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय, परम भागवत, सन्तकुलकमलदिवाकर, भक्तशिरोमणि परमगुरु श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने इसका जगह-जगह उल्लेख किया है। स्वयं भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके शब्दोंमें वे कहते हैं—

निर्मल मन जन सो मोहिं पावा। मोहिं कपट छल छिद्र न भावा॥

एक दूसरे स्थलपर वे ही कहते हैं—

मन क्रम बचन छाँड़ि चतुराई। भजतहिं कृपा करहिं रघुराई॥

वस्तुतः यह ऐसा विषय है कि समझते बनता है, समझाते नहीं। श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धका दूसरा अध्याय बड़ा ही सुन्दर, महत्त्वपूर्ण, उपादेय तथा हृदयग्राही है। इसका प्रत्येक अक्षर मननीय, आदरणीय एवं संग्रहणीय है। मुझे तो ऐसा लगता है कि भागवत तथा रामचरितमानसके प्रत्येक अक्षर ही भगवान्‌के मूर्तिमान् स्वरूप हैं। इसमें सन्देह भी नहीं करना चाहिये; क्योंकि '**श्रीमद्भागवताख्योऽयं प्रत्यक्षः कृष्ण एव हि। कृष्णे स्वधामोपगते.....पुराणार्कोऽधुनोदितः।**' '**रामभ्रमरभूषितः**' आदि शब्दोंसे इसका बहुधा समर्थन भी किया गया है। हाँ, तो उसी भागवतके दूसरे अध्यायमें भगवत्साक्षात्कारके पूरे नियम बतलाये गये हैं और वे हैं अत्यन्त निश्चित और तत्काल फल दिखलानेवाले। निःसन्देह वहाँ भगवच्चरितामृतपानको ही भगवत्-साक्षात्कारका मूल बतलाया गया है और यही सम्पूर्ण भागवत तथा रामचरितमानसका मत भी है; फिर भी यह सर्वसम्मत है कि उसमें निष्कपटता एवं हृदयकी सरलताकी भी महती आवश्यकता है। यद्यपि भागवतका तथोक्त प्रसंग किंचित् विस्तृत है; किंतु वह इतना रम्य, हृदयाकर्षक एवं मधुरिमामय है कि सर्वथा मननीय है, अथ च प्रभुके साक्षात्कारमें, उनके साथ सम्बन्ध करनेमें महान् सहायक है। अतएव पाठकोंकी सेवामें उपस्थित करनेयोग्य है। वहाँ सूतजीके निर्मल हृदयके ये परम दिव्योद्गार हैं—

'मुनिगण! आपलोगोंने बड़ा अच्छा किया, जो जगन्मंगल मंगलमय श्रीकृष्णके सम्बन्धमें प्रश्न पूछे। महात्माओ! पुरुषका तो सबसे बड़ा धर्म वही है, जिसके अनुष्ठानसे श्रीकृष्णके चरणोंमें अकारण, अहैतुकी, अव्यवहिता भक्ति उत्पन्न हो जाय, जिससे परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।'* भगवान् श्रीकृष्णमें प्रयुक्त भक्ति

---

* ये शब्द इतने मोहक, महामहिम तथा ओजपूर्ण हैं कि हृदयको हठात् आकृष्ट तथा वशीभूत कर लेते हैं। पूज्यपाद परम गुरुदेव श्रीमानसकारने इसका इन शब्दोंमें समर्थन किया है—

तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई॥
नाना कर्म धर्म ब्रत दाना। संजम दम जप तप मख नाना॥
भूत दया द्विज गुर सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई॥
जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी॥
जोग जग्य जप तप ब्रत कीन्हा। प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा॥
..... । लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा॥
जप तप नियम जोग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा॥
ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन॥
आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका॥
तव पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर फल यह सुंदर॥
जप तप मख सम दम ब्रत दाना। बिरति बिबेक जोग बिग्याना॥
सब कर फल रघुपति पद प्रेमा। तेहि बिनु कोउ न पावइ छेमा॥

शीघ्र ही वैराग्य एवं अद्वय ज्ञानको उत्पन्न करती है। इसलिये अनुष्ठित समस्त धर्म-कर्म यदि भगवच्चर्चा, भगवदीय-वार्तामें परमोत्कण्ठा एवं अनन्य रति न उत्पन्न कर सकें तो वे केवल श्रम ही हुए; क्योंकि धर्मका फल मोक्ष, भगवत्प्राप्ति होना चाहिये न कि अर्थ। इसी प्रकार अर्थकी सफलता धर्मोपार्जनमें है, कामोपभोगमें नहीं। कामका तात्पर्य जीवन-धारणके निमित्त भोजन-शयनमें है, इन्द्रियतृप्तिमें उनकी कोई महत्ता नहीं और जीनेका भी यही अर्थ होना चाहिये कि प्राणी 'तत्त्व' को समझ सके। स्वर्ग-प्राप्तिसे मनुष्य कृतार्थ नहीं हो सकता।[१] और वस्तुतः तत्त्व भी वही है, जिसे सांख्यवादी 'अद्वय ज्ञान' कहते हैं, वेदान्ती 'ब्रह्म' कहते हैं, योगी 'परमात्मा' कहते हैं और भक्त-भागवत जिसे 'भगवान्' कहते हैं। उस तत्त्वको मननशील मुनिजन ज्ञान-वैराग्ययुक्त श्रवणादि भक्तिके सहारे आत्मतत्त्वके रूपमें आत्मामें ही साक्षात् देखते हैं। इसलिये ब्राह्मणश्रेष्ठो! यह सिद्ध हुआ कि सारे धर्म-कर्मोंके अनुष्ठानका पर्यवसान भगवान्‌को प्रसन्न करनेमें है। पर जब यही बात है, तब क्यों नहीं एकाग्र मनसे बराबर सात्वतपति श्रीभगवान्‌की ही चर्चा सुनी जाय, कही जाय और उनका ही ध्यान और पूजन किया जाय। पुण्य-श्रवण-कीर्तन श्रीकृष्ण अपनी कथा सुनने-सुनानेवालोंके अन्तःकरणमें समासीन होकर सम्पूर्ण अमंगलमय काम-क्रोधादिका संहार कर डालते हैं।[२] इस प्रकार रज-तम आदि भावों एवं काम, क्रोध, लोभादि भयंकर दुर्गुणोंसे अनाविद्ध विशुद्ध चित्तमें विशुद्ध तत्त्वका आविर्भाव होता है एवं आत्मप्रसादकी उपलब्धि होती है। इस प्रकार मुक्तात्मा प्रसन्न-मन[३] पुरुषके हृदयमें भगवद्भक्तिके योगसे भगवत्तत्त्व-विज्ञानका उदय होता है और फिर तत्क्षण हृदयकी सारी ग्रन्थियाँ कट जाती हैं, सारे संशय नष्ट हो जाते हैं और सारे कर्म क्षीण हो जाते हैं। वस्तुतः ये हृदयकी ग्रन्थियाँ ही सारे अनर्थोंकी जड़ हैं। यों तो प्राणीके हृदयमें परमानन्दकन्द सच्चिदानन्दघन प्रभुका नित्य निवास है ही, किंतु हम छल-छद्म एवं अनेकानेक तुच्छ प्रपंचोंसे उनपर पर्दा डाले हुए रहते हैं और भूलकर भी उनकी ओर दृष्टिपात करना नहीं चाहते। प्राणी यदि अन्तर्हृदय और बाह्यमें सामंजस्य स्थापित कर सके तो परमानन्दस्वरूप परमात्माके अतिरिक्त कोई भी वस्तु न दीख सकेगी। सत्यकी महत्ता बतलाते हैं और उसकी 'जो हृदयमें है वही मुँहसे कहा जाय' यह परिभाषा बतलाते हैं; पर वस्तुतः हृदयमें तो साक्षात् परमात्मा ही है, इसलिये परम और चरम सत्य वही है और इस अपूर्व तत्त्व-रहस्यको जाननेवाले सहृदय सन्त इस—

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यामृतसत्यनेत्रं
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः॥

(श्रीमद्भा० १०।२।२६)

—के भावोंसे नित्य-निरन्तर, सदा-सर्वदा उन्हींके कथा-श्रवण, चरित्र-चिन्तन, नाम-कीर्तन, रूप-स्मरण एवं पाद-सेवन, वन्दन आदिमें निरत रहते हैं। वस्तुतः निश्छल हृदयके प्राणीकी ***'श्रवनन्हि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गैहौं'*** की प्रतिज्ञा निभ पाती है।

सचमुच जबतक प्राणी सारे छल-कपटोंका परित्यागकर सर्वात्मना भगवान्‌का आश्रय नहीं ले लेता, उसे परमार्थकी प्राप्ति नहीं होती। हृदयकी ग्रन्थि छोड़कर

१-'अमृतत्वस्य नाशास्ति वित्तेन' (बृ०आ० उप०)

२-गीताके १०।१०-११ में तथा रामचरितमानसकी—

तब लगि हृदयँ बसत खल नाना। काम क्रोध मच्छर मद माना॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरें चाप सायक कटि भाथा॥
ममता तरुन तमी अँधिआरी। राग द्वेष उलूक सुखकारी॥
तब लगि बसत जीव उर माहीं। जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं॥

आदि चौपाइयोंमें भी यही बात कही गयी है।

३-यहाँ प्रसन्न-मनका अर्थ प्रसादसम्पन्न मन है, दृप्त नहीं।

वह निश्चिन्त हो जाता है और पुनः धर्म-कर्म आदिकी चिन्ताको छोड़कर वह सदा सर्वत्र निर्लज्ज और निःशंक होकर भगवत्सम्बन्धी वार्ताओंमें ही रत रहता है। भगवन्नाम, यश, रूप आदिका ध्यान ही उसका जीवन होता है और यही *'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'* का अर्थ होता है। किसी भी बुद्धिमान्‌को यह तिरोहित न होना चाहिये कि हृद्ग्रन्थिका मूल कारण तथा छल-छद्मका प्रमुख आवरण प्राणीका हर्ष ही होता है और यह हर्षण ही, दर्पादि सम्पूर्ण अनर्थोंका मूल एवं भगवद्ध्यानादिकोंसे च्युत करानेवाला होता है। आपस्तम्बमें यह बहुत ठीक लिखा है कि हर्षित प्राणी दृप्त (दर्पयुक्त) हो जाता है और वह अहंकारके वश होते ही धर्मका अतिक्रमण करने लग जाता है—

'हृष्टो दृश्यति, दृप्तो धर्ममतिक्रामति'

वस्तुतः प्रभुको खिन्न एवं दीन प्राणी ही अत्यन्त प्यारा होता है *'जिन्हहि परम प्रिय खिन्न।'*[१] **'निष्किञ्चना वयं शश्वन्निष्किञ्चनजनप्रियाः।'** *'जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे'* *'यहि दरबार दीनको आदर रीति सदा चलि आई'* आदिसे भी पूज्य गुरुदेवने यही बात प्रदर्शित की है। इसीलिये कुन्तीने पग-पगपर विपत्तियाँ ही माँगीं—

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥

(श्रीमद्भा० १।८।२५)

क्योंकि हृष्ट और दृप्त[२] पुरुष अकिंचन-गोचर प्रभुको जाननेयोग्य नहीं रहता।

जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान्।
नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चनगोचरम्॥

(श्रीमद्भा० १।८।२६)

इतना ही नहीं, वह असदाश्रय, हर्षोन्मत्त, दृप्त पुरुष मुकुन्द-पद-पद्ममकरन्दैषी सन्तोंद्वारा भी उपेक्षणीय होता है।

साधूनां समचित्तानां मुकुन्दचरणैषिणाम्।
उपेक्ष्यैः किं धनस्तम्भैरसद्भिरसदाश्रयैः॥

(श्रीमद्भा० १०।१०।१८)

हृष्ट पुरुष अशान्त तथा असमाहित भी होता है और श्रुति उसे प्रज्ञानके योग्य नहीं बतलाती। इस तरह हर्ष, दर्प एवं मायाके अन्यान्य आवरणादिकोंसे उन्मुक्त विशुद्ध, निर्मल चित्तसे धारावाहिक भगवद्ध्यानादियुक्त पुरुष ही सरलतापूर्वक प्रतिक्षण

भगवान्‌की दिव्य झाँकीका आलोक प्राप्त करता चलता है। दीनता और तदनुकूल निश्छलता हो तो प्रभुके आलोकमें किंचिदपि विलम्ब नहीं, पर जब हम वस्तुतः सर्वथा दीन, हीन, पतित एवं गये-गुजरे होकर भी झूठमूठकी स्तब्धता, प्रसन्नता एवं आढ्यताका नाटकीय प्रदर्शन करने लग जाते हैं, तब वस्तुतः अपने दुर्भाग्यको क्या कहा जाय?

१-इसीलिये आर्तोंका आर्तिशमन नाम जपते-न जपते ही होता देखा जाता है—
जपहिं नाम जन आरत भारी। मिटै कुसंकट होहिं सुखारी॥
२-अहंकारी प्राणी तो भगवान्‌का सबसे प्रबल शत्रु-सा होता है। अन्यत्र भी कहा गया है—
यथा सूर्योदये जाते तमोरूपं न तिष्ठति॥ अहङ्काराङ्कुरस्याग्रे तथा पुण्यं न तिष्ठति। (देवीभा० ४।७।२५-२६)

साधकोंके प्रति—

भगवत्स्मरणकी महिमा

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

पद्मपुराणके रामाश्वमेध-प्रकरणमें श्रीहनुमान्‌जीकी एक बड़ी महत्त्वपूर्ण घटनाका उल्लेख मिलता है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका अश्वमेध-यज्ञके लिये छोड़ा हुआ घोड़ा अनेक देश-देशान्तरोंमें भ्रमण करता हुआ जब रामभक्त राजा सुरथके कुण्डलनगरमें पहुँचा, तब राजाने भगवान्‌के दर्शनकी लालसासे उस घोड़ेको पकड़वा लिया। जब अश्वरक्षक शत्रुघ्न आदिको घोड़ेके पकड़े जानेका पता लगा, तब उन्होंने उनसे युद्ध करके अश्वको छुड़ा लानेका विचार किया। इतनेमें ही धर्मात्मा राजा सुरथ और उनके राजकुमार चम्पक भी रणभूमिमें पहुँच गये तथा दोनों ओरके सैनिक आपसमें लड़ने लगे। राजकुमार चम्पकने भरतकुमार पुष्कलको रामास्त्रका प्रयोग करके बाँध लिया। यह देखकर श्रीहनुमान्‌जीने चम्पकके सामने जाकर युद्ध किया तथा चम्पकको युद्धभूमिमें गिराकर मूर्च्छित कर दिया और पुष्कलको बन्धनसे छुड़ा लिया।

इसपर राजा सुरथने श्रीहनुमान्‌जीकी रामभक्तिकी बड़ी प्रशंसा की और वे उनसे युद्ध करने लगे। जब राजाके छोड़े हुए ब्रह्मास्त्रको श्रीहनुमान्‌जी निगल गये, तब राजाने श्रीरघुनाथजीका स्मरण करके रामास्त्रका प्रयोग किया। उस समय श्रीहनुमान्‌जी बोले—'राजन्! क्या करूँ, तुमने मेरे स्वामीके अस्त्रसे ही मुझे बाँधा है; अतः मैं इसका आदर करता हूँ। अब तुम मुझे इच्छानुसार अपने नगरमें ले जाओ। मेरे प्रभु दयासागर हैं, वे स्वयं ही आकर मुझे छुड़ायेंगे।'

श्रीहनुमान्‌जीके बाँधे जानेपर पुष्कलने राजासे युद्ध किया, किंतु वे अन्तमें मूर्च्छित होकर गिर पड़े। तब शत्रुघ्नने राजासे बहुत देरतक युद्ध किया, पर वे भी राजाके बाणके आघातसे मूर्च्छित होकर रथपर गिर पड़े। यह देखकर सुग्रीव उनसे लड़ने गये, पर राजाने उनको भी रामास्त्रका प्रयोग करके बाँध लिया।

तदनन्तर राजा सुरथ उन सबको रथपर डालकर अपने नगरमें ले गये। वहाँ जाकर वे राजसभामें बैठे और बँधे हुए हनुमान्‌जीसे बोले—'पवनकुमार! अब तुम भक्तोंके रक्षक परम दयालु श्रीरघुनाथजीका स्मरण करो, जिससे सन्तुष्ट होकर वे तुम्हें तत्काल बन्धनमुक्त कर दें।' श्रीहनुमान्‌जीने अपनेसहित सब वीरोंको बँधा देखकर कमलनयन परम कृपालु श्रीरामचन्द्रजीका सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे स्मरण किया। वे मन-ही-मन कहने लगे—

हा नाथ हा नरवरोत्तम हा दयालो
सीतापते रुचिरकुण्डलशोभिवक्त्र।
भक्तार्तिदाहक मनोहररूपधारिन्
मां बन्धनात् सपदि मोचय मा विलम्बम्॥

(पद्म० पाताल० ५३। १४)

'हा नाथ! हा पुरुषोत्तम! हा सुन्दर कुण्डल और शोभासम्पन्न वदनवाले, भक्तोंके दुःख दूर करनेवाले तथा मनोहर विग्रह धारण करनेवाले दयालु सीतापते! मुझे इस बन्धनसे शीघ्र मुक्त कीजिये, देर न लगाइये।'

श्रीहनुमान्‌जीके इस प्रकार प्रार्थना करते ही तुरंत भगवान् श्रीरामचन्द्रजी पुष्पक विमानपर आरूढ़ होकर वहाँ आ पहुँचे। भगवान्‌को पधारे देख राजा सुरथ प्रेममग्न हो गये और उन्होंने भगवान्‌को सैकड़ों बार प्रणाम किया। श्रीरामने भी चतुर्भुजरूप धारण करके अपने भक्त सुरथको छातीसे लगा लिया और आनन्दाश्रुओंसे उसका मस्तक अभिषिक्त करते हुए कहा—'राजन्! तुम धन्य हो। आज तुमने बड़ा पराक्रम दिखाया है।' फिर भगवान्‌ने श्रीहनुमान्, सुग्रीव, शत्रुघ्न, पुष्कल आदि सभी योद्धाओंपर दया-दृष्टि डालकर बन्धन और मूर्च्छासे मुक्त किया। उन्होंने उठकर भगवान्‌को प्रणाम किया। राजा सुरथने प्रसन्नतापूर्वक अपना राज्य भगवान् श्रीरामको समर्पित कर दिया। भगवान् तीन दिन कुण्डलनगरमें रहे, फिर राजा सुरथको ही राज्य सौंपकर उनकी सम्मति ले वहाँसे चले गये। तब राजा सुरथ अपने राजकुमार चम्पकको राज्यभार देकर शत्रुघ्नके साथ अश्वकी

रक्षाके लिये चल पड़े।

यहाँ हमें भक्त हनुमान् और राजा सुरथके भक्ति-भावपूर्वक किये हुए स्मरणके प्रभावपर ध्यान देना चाहिये। उनकी अनन्य भक्तिसे आकृष्ट होकर भगवान् तुरंत वहाँ पहुँच गये। भगवान्‌के प्रेमपूर्वक अनन्य स्मरणका बड़ा भारी माहात्म्य है। भक्त सुधन्वाकी कथा देखिये, भगवान्‌के स्मरणके प्रभावसे अत्यन्त प्रतप्त तेल भी उनके लिये अतिशय शीतल हो गया तथा अर्जुनके साथ युद्ध करते समय भी जगह-जगह भगवत्स्मरणका प्रभाव दिखायी पड़ता है।

जब अर्जुनने भगवान्‌का स्मरण करके तीन बाण निकालकर प्रतिज्ञा की कि इन तीन ही बाणोंसे मैं सुधन्वाका मस्तक काट डालूँगा, अगर ऐसा न कर सकूँ तो मेरे पूर्वज पुण्यहीन होकर नरकमें गिर पड़ें। तब ठीक इसके विरुद्ध सुधन्वाने भगवान्‌का स्मरण करके प्रतिज्ञा की कि इन तीनों ही बाणोंको मैं अपने बाणोंसे काट डालूँगा, यदि ऐसा न कर सकूँ तो मुझे घोर गति प्राप्त हो। भगवान्‌ने इन दोनों ही भक्तोंकी भगवत्स्मरणपूर्वक की गयी प्रतिज्ञाको सच्चा किया। भक्त अर्जुनकी रक्षाके लिये भगवान्‌ने पहले बाणको अपने गोवर्धनधारणका पुण्य अर्पित करके बाण छोड़नेका अर्जुनको आदेश दिया। अर्जुनने तदनुसार बाण छोड़ा, किंतु सुधन्वाने भगवान्‌को याद करके अपने बाणसे उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। तब भगवान्‌ने अर्जुनको दूसरा बाण सन्धान करनेकी आज्ञा दी और साथ ही उसे अपने अन्य अनेक पुण्य अर्पण किये। अर्जुनके दूसरा बाण छोड़ते ही सुधन्वाने उसे भी भगवान्‌का स्मरण करके काट डाला। अब तीसरा बाण रहा, भगवान्‌ने उसे अपने रामावतारका पुण्य अर्पण कर दिया तथा उसके पिछले भागमें ब्रह्माजी और बीचमें कालको जोड़कर अग्रभागमें स्वयं विराजे एवं अर्जुनको बाण चलानेकी आज्ञा दी। जब अर्जुनने तीसरा बाण छोड़ा, तब सुधन्वाने भगवान्‌से कहा—'भगवन्! आप स्वयं इस बाणमें विराजमान हैं, यह मैं जान गया हूँ। अब आप मुझे अपने चरणोंमें आश्रय देकर कृतार्थ करें।' यों कहकर भगवान्‌का स्मरण करते हुए उन्होंने अपने बाणसे उसके भी दो टुकड़े कर दिये। उन दो टुकड़ोंमेंसे पिछला भाग पृथ्वीपर गिर पड़ा तथा अग्रभागवाला टुकड़ा, जिसपर भगवान् श्रीकृष्ण विराजे थे, उछला और उसने सुधन्वाका मस्तक काट डाला। सुधन्वाका सिर कटकर भगवान्‌के चरणोंमें आ गिरा। अपने सम्मुख भगवान्‌का दर्शन करते हुए उसके मुखसे एक ज्योति निकलकर भगवान्‌में प्रवेश कर गयी, इस रहस्यको किसीने नहीं जाना।

अतएव भगवत्स्मृतिके प्रभावको लक्ष्यमें रखकर हमें भी प्रत्येक क्रिया भगवान्‌का स्मरण रखते हुए ही करनी चाहिये। सांसारिक कार्य करते हुए भी नित्य-निरन्तर भगवान्‌का स्मरण होते रहना चाहिये। परंतु एकान्तमें भगवान्‌का भजन-स्मरण, सेवा-पूजा आदि नित्यकर्मके लिये बैठें, तब तो संसारका स्मरण किंचित् भी न हो—ऐसा विशेष ख्याल रखनेकी आवश्यकता है। भगवत्स्मरण नित्य-निरन्तर होनेके लिये भगवान्‌में अनन्य प्रेम, सत्पुरुषोंका संग, सच्छास्त्रोंका मननपूर्वक स्वाध्याय, भगवान्‌के नामका जप, भगवान्‌की स्तुति-प्रार्थना, भगवत्कृपासे निरन्तर स्मृति बनी रहनेका दृढ़ विश्वास और हर समय सावधानीपूर्वक उस स्मृतिको बनाये रखनेकी चेष्टा—ये सात विशेष सहायक हैं। इन सातोंका अनुष्ठान करते हुए जो एकमात्र भगवान्‌का ही अनन्य स्मरण करता है, उसकी सम्पूर्ण विघ्न-बाधाओंका नाश हो जाता है और उसे शीघ्र ही भगवत्प्राप्ति हो जाती है। भगवान्‌के स्मरणका प्रभाव और माहात्म्य क्या बतलाया जाय—

यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात्।
विमुच्यते नमस्तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे॥

'जिसके स्मरणमात्रसे मनुष्य आवागमनरूप बन्धनसे छूट जाता है, सबको उत्पन्न करनेवाले उस परम प्रभु श्रीविष्णुको बार-बार नमस्कार है।'

पर्यावरण-संरक्षक वटसावित्री व्रत

(श्रीसलिलजी पाण्डेय)

ऋषियों-मुनियोंने प्रकृतिको देवी-देवताकी श्रेणीमें यूँ ही नहीं रखा। चूँकि प्रकृतिसे सिर्फ मनुष्यको ही नहीं बल्कि हर पशु-पक्षी, जीव-जन्तु—सभीको जीवन मिलता है, इसलिये इसकी रक्षा करना पुनीत कर्तव्य बताया गया है। इसी क्रममें घोर ग्रीष्म-ऋतुमें वृक्षोंकी देखभालके इरादेसे धार्मिक कार्यक्रमों एवं पूजनके विधान किये गये। ज्येष्ठ माहके कृष्णपक्षकी त्रयोदशी तिथिसे अमावस्यातक उत्तर भारतमें वटसावित्रीका व्रत और पूजन आस्थाके साथ सौभाग्यवती महिलाएँ करती हैं। वट प्रजातिके वृक्षोंमें बरगदके साथ पीपल, गूलर, पाकर, ढेसूरके पेड़ शामिल हैं। अपनी टहनियोंसे स्वयंको लपेट लेनेके कारण ये वटवृक्ष हैं। इसमें सबसे अधिक वेष्टन करनेवाला वृक्ष बरगद ही है। ढेसूर तो चट्टानी पहाड़ोंके पत्थरोंपर उगता है, पीपल अहर्निश आक्सीजन देता है, लेकिन बरगद तो धरतीको आगका गोला होनेसे बचाता है। केवल भारतमें ही नहीं, बल्कि कई विकसित देशोंमें इन पेड़ोंका नामकरण धर्मके साथ जोड़कर फाइकस रिलीजियस, फाइकस ग्लूमेरेटियस आदिसे किया गया है। अरब देशोंमें भी भारतमें पूजे जानेवाले अनेक वृक्षोंको महत्त्व दिया जाता है। इस तरहके वृक्षोंको 'आजाद-ए-दरख्त-ए-हिन्द' कहा जाता है।

वट-सावित्रीव्रतके दौरान बरगदकी विधिवत् पूजा की जाती है। वटसावित्रीव्रतकी मान्यता तो सतयुगमें पतिव्रता सावित्रीद्वारा अपने पतिको कठोर तपस्याके बलपर यमराजके चंगुलसे मुक्त करानेसे जुड़ी है, लेकिन त्रेतामें श्रीराम एवं द्वापरमें योगेश्वर श्रीकृष्णने भी इन पेड़ोंकी पूजा की थी। वनस्पति-विज्ञानकी रिपोर्टके अनुसार यदि बरगदके वृक्ष न हों तो ग्रीष्म-ऋतुमें धरतीपर जीवन नष्ट हो जाय। मानवसहित सभी जीव जिन्दा नहीं रह सकते। धरती अग्निकुण्ड बन जायगी और सब उसीमें झुलस जायँगे। वनस्पति-विज्ञानकी रिसर्चके अनुसार सूर्यकी ऊष्माका २७ प्रतिशत हिस्सा बरगदका पेड़ अवशोषितकर पुनः आकाशमें नमी प्रदानकर लौटाता है, जिससे बादल बनता है और वर्षा होती है। बरगदकी इन्हीं विशेषताओंके चलते त्रेतायुगमें वनवासपर निकले भगवान् श्रीराम भरद्वाज ऋषिके आश्रममें पहुँचनेके एक दिन पूर्व रात्रि-विश्रामके लिये जब रुकते हैं, तब लक्ष्मणजी वटवृक्षके नीचे ही विश्रामकी व्यवस्था करते हैं। दूसरे दिन प्रातः भरद्वाज ऋषिके आश्रममें जाते हैं और जब वहाँसे चित्रकूटकी तैयारी करते हैं तो ऋषिने यमुनाकी पूजाके साथ श्यामवट (बरगदके पेड़)-की पूजाकर उससे आशीर्वाद लेनेका उपदेश दिया। उस श्यामवटसे जंगलके प्रतिकूल आघातोंसे रक्षाकी प्रार्थना सीता करती हैं—

नमस्तेऽस्तु महावृक्ष पारयेन्मे पतिर्व्रतम्॥
कौसल्यां चैव पश्येम सुमित्रां च यशस्विनीम्।

(वा०रा० २।५५।२४-२५)

आस्थाके इस वृक्षको मानव-जीवनका संरक्षक इसलिये भी माना जाता है कि इस पेड़की संरचना बिल्कुल जीवधारियों-जैसी है। मनुष्यके मस्तिष्क (ब्रेन)-से निकलनेवाले नर्वस सिस्टम (तन्त्रिका-प्रणाली)-की तरह इसकी जटाएँ ऊपरसे नीचे आती हैं और अपनी जड़ों और तनेको ताकत देते हुए यह पेड़ लम्बे दिनोंतक छाया देता है। शरीरमें भी मस्तिष्क (ब्रेन)-से मेरुदण्डके सहारे मेरुरज्जु बरगदकी जटाओं (टहनियों और वरोहों)-की तरह नीचेकी ओर आती हैं, जिसमें कुल ६४ नर्व्स शरीरको स्वस्थ बनानेकी भूमिका अदा करती हैं। इसमें सर्वाइकल, डारसल, लम्बर आदि हैं। नर्व्स और आर्टरी (नस-नाड़ियों)-का काम रक्त-संचालनमें प्रमुख है। इसमें कहीं भी विकृति या व्यवधान आनेपर व्यक्ति अस्वस्थ हो जाता है। खुले स्थानपर इसके रोपणसे इसका घेरा इतना बड़ा हो जाता है कि हजारों-हजार लोग इसके नीचे बैठ सकते हैं और इसकी ऊँचाई १००

फीटतक पहुँच जाती है।

सावित्री और सत्यवान्‌की पौराणिक कथाके संकेत प्रकृतिके सहारे अकाल मौतके मुँहमें जानेसे बचना भी है। सावित्री मद्रदेशके राजा अश्वपतिकी कन्या थी। सन्तानविहीन राजाने वेदमाता सावित्री, जो कि सूर्यकी पुत्री हैं, की कठोर तपस्या की, जिनके वरदानसे पैदा हुई कन्याका नाम सावित्री ही रखा गया। सूर्यकी वरेण्य किरणोंके साथ योगके फलस्वरूप प्राप्त कन्या सावित्रीके तेजके चलते कोई राजकुमार जब विवाहयोग्य नहीं मिला तो पिताके आदेशपर सावित्रीने धर्मनिष्ठ एवं सत्यनिष्ठ शाल्वदेशके राजा द्युमत्सेनके पुत्रसे स्वयं वरण करनेका निर्णय किया। विवाहकी तैयारी शुरू हुई कि इसी बीच महर्षि नारदजी आ गये और सत्यवान्‌की आयु एक साल ही बताया। पिताकी चिन्ता देख सावित्रीने कहा कि एक पतिको कन्यादानका संकल्प और किसी प्रकारके दानकी घोषणाको स्वहितमें बदलना शास्त्रविरुद्ध है। सावित्रीकी दृढ़तापर विवाह सम्पन्न हो गया। नारदद्वारा बताये गये मृत्यु-दिवसके चार दिन पूर्व सावित्रीको बुरा स्वप्न आता है। दूसरे दिन वह निराहार व्रतका संकल्प लेकर यज्ञ-समिधाके लिये पतिके साथ जंगलमें लकड़ी लेने खुद भी चलनेके लिये कहती है, जिसपर श्वसुर अनुमति दे देते हैं। शास्त्रोंमें यज्ञ आदिके लिये यज्ञकर्ताको खुद लकड़ी लाना चाहिये। सत्यवान्‌को उस दिन लकड़ी काटते हुए अचानक सिरमें तेज दर्द होने लगा। सावित्री पतिका सिर गोदमें लेकर बैठ गयी। तभी एक दिव्य पुरुष प्रकट हुआ और सत्यवान्‌का अंगुष्ठ बराबर प्राण लेकर जाने लगा। सावित्रीने दिव्य पुरुषसे पूछा—आप कौन हैं? जवाब मिला—मैं यमराज। फिर सावित्री बोली—प्राण लेने तो आपके यमदूत आते हैं, आप स्वयं क्यों आये? जिसपर वे बोले—सत्यवान् एक धर्मनिष्ठ और सत्यनिष्ठ राजकुमार है, इसलिये मैं स्वयं आया, दूतोंमें सत्यवान्‌को ले जानेकी क्षमता नहीं है। इन्हीं लगातार संवादोंके बीच पतिव्रता सावित्री 'अपने श्वसुर द्युमत्सेनकी नेत्रज्योति लौट आये, खोया राज्य पुनः प्राप्त हो जाय और स्वयं पुत्रवती बन जाय' का वरदान यमराजसे ले बैठी। वरदानके बाद भी यमराज सत्यवान्‌को यमलोक ले ही जा रहे थे और सावित्री उनका पीछा कर रही थी। यमराजने कहा, और भी जो वरदान माँगना हो, माँग लो, लेकिन सत्यवान् तो जीवित नहीं हो सकेगा। तब सावित्रीने कहा—पुत्रवती होनेका आप वरदान दे चुके हैं। अन्तमें यमराजने सत्यवान्‌का प्राण वापस किया।

इस कथानकसे स्पष्ट है कि प्रकृतिके साथ घुलमिलकर और तालमेल बनाकर जीवन जीनेसे तमाम तरहके शारीरिक रोग नष्ट होंगे और मनकी सत्प्रवृत्तियाँ नष्ट नहीं होंगी। स्त्रियोंकी वट-वृक्षकी पूजाके कई अर्थ हैं। एक तो स्त्रीरोगोंके नियन्त्रणमें वट-वृक्ष सहायक होते हैं। वट-वृक्षकी छाया, छाल, फल, पत्ते निःसन्तान महिलाओंमें गर्भधारणकी क्षमता प्रदान करता है। इसके अलावा अन्य स्त्री-रोगोंमें भी इस वृक्षका औषधीय महत्त्व है। इसके पत्तोंसे निकलनेवाला दूध आर्थराइटिसके दर्दको नियन्त्रित करता है। मासिक अनियमितितामें बरगद और पीपलकी छाया तथा पत्तोंका सेवन लाभकारी है। इसके अलावा यह पेड़ मानव-शरीर-जैसा होनेकी वजहसे सूर्यकिरणोंसे निकलनेवाली लाभप्रद ऊर्जाको धरतीकी ओर प्रेषित करता है। पीपलकी तरह यह भी कार्बन अधिक अवशोषित करता है। वनस्पति-विज्ञानी तो मानते हैं कि वृक्षमें जीवन है। वे मनुष्यकी संवेदनाको समझते हैं, पर मनुष्यकी तरह मौखिक प्रतिक्रिया नहीं व्यक्त कर पाते। वटसावित्रीकी पूजामें पहले दिन बरगद पेड़ लगाने, दूसरे दिन इसकी रखवाली करने और तीसरे दिन पूजा करनेका भी विधान है, ताकि ज्येष्ठमाहमें रोपित पौधे वर्षा-ऋतुमें पूरी तरह बढ़ने लगें। इस प्रकार वट-सावित्री-व्रत अपने धार्मिक महत्त्वके साथ-साथ पर्यावरण-संरक्षणका भी सन्देश देता है।

बोध-कथा—

नया दोस्त, पुराना दुश्मन

(वैद्य श्रीमोहनलालजी गुप्त)

बात सन् १९९० की है। एक व्याख्याता महोदय श्री आर०सी० अग्रवाल नये-नये व्याख्याता हुए थे। उत्तर प्रदेशके रहनेवाले थे, मध्यप्रदेशमें सर्विस लगी थी। सर्विस लगी तब वे अविवाहित थे। सर्विस लगनेके लगभग दो साल बाद उनकी शादी अच्छे भरे-पूरे घरमें एक शिक्षित सुन्दर कन्यासे हुई थी। उस समय वह लड़की भी शिक्षिकाके पदपर कार्यरत थी। चूँकि लड़की ग्रेजुएट थी, इसलिये मायकेमें ही एक कन्या हाईस्कूलमें अध्यापन कार्य करती थी।

नयी-नयी शादी थी तथा दोनों अलग-अलग जिलोंमें सर्विस करते थे। अत: श्री अग्रवाल छुट्टीके दिन महीनेमें एक-दो बार अपनी ससुराल चले जाया करते थे।

एक बार लम्बी छुट्टियोंमें दोनों माता-पितासे मिलने अपने गाँव उत्तर प्रदेश गये। छुट्टियाँ पूरी करके दोनों एक बड़ी अटैचीमें अपने सभी कपड़े, जेवर एवं अन्य सामान भरकर ट्रेनद्वारा अपने गन्तव्य पथपर सफर कर रहे थे। दोनोंपर नयी रोशनीकी छाप स्पष्ट दृष्टिगत हो रही थी। हँसी-मजाक करते, कभी कुछ खाते दोनों रास्ता तय कर रहे थे। कभी अखबार पढ़ते तो कभी कोई पत्रिका पढ़ते-पढ़ते आपसमें बातें करने लग जाते और बातोंमें घुलमिल जाते। सभी मुसाफिर अपनी-अपनी यात्रा तय कर रहे थे। हर स्टेशनपर कोई सवारी उतरती एवं कोई चढ़ती थी।

एक स्टेशनपर ट्रेन रुकी, यहाँ इनको ट्रेन बदलनी थी। अत: तत्काल दोनोंने अपने हाथका सामान समेटा। श्रीअग्रवालजी ने अटैची उठायी और पत्नीको साथ लेकर दूसरी ट्रेन पकड़ने चल दिये। ट्रेन दूसरे प्लेटफार्मपर खड़ी थी, जल्दी-जल्दी पहुँचकर दोनोंने अपनी सीट सँभाली। वहीं एक अधेड़ उम्रका व्यक्ति इनकी सामनेवाली बर्थपर आकर बैठ गया, उसके पास केवल एक छोटा-सा थैला था, जिसमें शायद उसके कपड़े ही रहे होंगे।

थोड़ी देर बाद ट्रेन चली, पहले तो अग्रवालजी उस मुसाफिरको एवं वह मुसाफिर अग्रवालजीको थोड़ी-थोड़ी देरमें देखने लगे। मुसाफिरने अपने जर्देका बटुआ निकाला और सुपारी काटने लगा। तभी अग्रवालजीने उसकी ओर देखा। मुसाफिरने हाथ बढ़ाया और कहा—लीजिये सर, सुपारी। अग्रवालने सुपारी ली, तभी मुसाफिरने अपना बटुआ देते हुए कहा—इसमें लौंग और जर्दा भी है। अग्रवालजीको जर्दा खानेका शौक था, उन्होंने तत्काल बटुआ लिया और अपना शौक पूरा किया। इसके बाद स्वाभाविक ही मुसाफिरने पूछा, आपको कहाँ जाना है सर? अग्रवालजीने पत्रिकाका पेज पलटते हुए कहा—हमें भोपाल उतरना है, वहाँसे बसद्वारा शाजापुर जाना है। तभी अग्रवालजीने भी पूछ लिया—आपको कहाँ जाना है?

मुसाफिर बोला—आपका और मेरा साथ भोपालतक तो रहेगा, वहाँसे मुझे आगरकी बस पकड़ना है। आगरके पास तनोडिया एक गाँव है, जहाँ बच्चेकी ससुराल है।

'फिर तो बहुत अच्छा हमें भी आगर ही जाना है' मिसेज अग्रवालने कहा।

'फिर तो हम हमसफर हुए' मुसाफिरने मुसकराते हुए कहा।

बातको आगे बढ़ाते हुए उस व्यक्तिने फिर कहा—लम्बे सफरमें यदि कोई अच्छा साथी ना हो तो सच कहता हूँ, रास्ता भी लम्बा लगता है और बोरियत भी इतनी होती है कि जी घबराने लगता है। तम्बाकू खाते-खाते भी मन ऊब जाता है। अकेला होनेपर कोई वस्तु खरीदकर खानेकी भी इच्छा नहीं होती।

तुम ठीक कहते हो, ट्रेनका लम्बा सफर तो उबानेवाला सफर होता है। अग्रवालजीने युवककी तरफ मुखातिब होकर कहा।

आप क्या काम करते हैं साहब? शायद कहीं सर्विस करते होंगे? युवकने पूछा।

'मैं एक हायर सेकेण्डरी स्कूलमें व्याख्याता हूँ।'

व्याख्याता क्या होता है साहब?

अग्रवालजीके उत्तरके पहले ही मिसेजने कहा, 'मास्टर'।

अग्रवालको मास्टर शब्द सुनकर थोड़ा बुरा लगा। अत: उन्होंने स्पष्ट करते हुए कहा—व्याख्याता मास्टरसे बड़ा होता है।

ठीक है साहब! समझ गया, छोटा हो या बड़ा, काम तो बच्चोंको पढ़ानेका ही करते हैं। युवकने साधारण भाषामें कहा।

इसके बाद दोनों विविध प्रकारकी बातें करते रहे। थोड़ी देर बाद एक छोटा स्टेशन आया। युवक अपना थैला 'देखते रहना' कहकर डिब्बेसे नीचे उतरा, पास ही केले बेचनेवालेसे एक दर्जन केले लिये और ट्रेनमें आ गया। दो मिनटमें ट्रेन चल दी, युवकने चार केले अपने लिये रखकर शेष केले अग्रवालजीकी ओर बढ़ाकर कहा—'लीजिये साहब! केले खाइये'। इस प्रकार सबने मिलकर केले खाये। थोड़ी देर बाद एक मूँगफली बेचनेवाला उस डिब्बेमें आया, युवकने सौ ग्राम मूँगफली ली और साहबको देते हुए बोला—'ट्रेनमें बदमाशोंसे सावधान रहना चाहिये, अपने सामानको सीटके नीचे नहीं रखना चाहिये। अक्सर चोरी हो जाती है तथा रास्तेमें किसी अनजानकी दी हुई वस्तुको नहीं खाना चाहिये। आजकल बदमाश लोग गलत चीजें खिलाकर बेहोश कर देते हैं और लूट ले जाते हैं।'

'बिलकुल सही बात है, अक्सर ऐसी घटनाएँ हो जाती हैं।' अग्रवालने बातमें बात मिलाते हुए कहा।

फिर धीरे-धीरे अनौपचारिक बातें चलने लगीं। कभी सरकारकी आलोचना, नेताओंकी मनमानी, कभी शिक्षाके स्तरकी बात करते, कभी महँगाईका बखान करते। थोड़ी देर बाद एक स्टेशन आया, प्लेटफार्मपर ज्यों ही गाड़ीने अपनी गति धीमी की तभी एक चायवालेकी आवाज सुनायी दी।

युवकने तीन चायका आर्डर दिया। चाय आयी, तीनोंने पी, अबकी बार चायके पैसे अग्रवालजी ने दिये।

इस प्रकार आपसी चर्चा और परस्पर खाने-पीनेसे दोनोंमें मित्रता और विश्वास इतना बढ़ गया कि मानों दोनों बरसोंसे जाने-पहचाने मित्र हों। ट्रेनकी थोड़ी-सी देरकी मित्रता परस्पर स्नेहमें इतनी बदल गयी कि देखकर कोई यह नहीं सोच सकता था कि ये आजके ही हमराही हैं। हँसी-मजाक, परस्पर चर्चा एवं तम्बाकूके डोजमें भोपाल स्टेशन आ गया। ट्रेन रुकी, जिन मुसाफिरोंको उतरना था, अपने-अपने सामानको सँभालते हुए उतरने लगे। ये तीनों भी अपना सामान लेकर उतरनेको तैयार हुए।

युवकके पास केवल एक थैला था, परंतु अग्रवालजीके पास एक बड़ी अटैची थी तथा मिसेजके पास एक पर्स था। अग्रवाल-दम्पती ट्रेनके दरवाजेके पास आये, वहाँ युवकने मित्रता निभाते हुए अटैची उतारनेमें मदद की।

अब अग्रवालजीने एक कुलीको आवाज दी, कुली आया, उसने अटैची उठायी। सभी स्टेशनके बाहर आये। रातका समय नजदीक था, इनको बसस्टैण्डपर आकर अपनी बस पकड़नी थी। अत: अग्रवालजी सपत्नीक ताँगेपर सवार होकर बसस्टैण्डको चल दिये, युवक भी सिटी बससे आकर पुन: इनसे मिल गया। उसने फिर अटैची उतारनेमें मदद की।

अग्रवाल अपनेको बड़ा भाग्यशाली समझ रहे थे। सोच रहे थे, आदमी कितना भला है! परदेशमें कौन किसकी मदद करता है, अपनी श्रीमतीजीसे भी उसकी सहानुभूतिकी चर्चाकर प्रसन्नता व्यक्त कर रहे थे। पर यह नहीं मालूम था कि नया दोस्त और पुराना दुश्मन कभी विश्वसनीय नहीं होता। स्टैण्डपर एक तरफ अपना सामान रखकर बसकी तलाश करने गये। पता चला कि बसमें अभी एक घण्टेकी देर है। रातका समय था, बिजली का प्रकाश ही उस समय हर व्यक्तिका साथ दे रहा था। तभी मिसेज अग्रवालने बाथरूम जानेका संकेत दिया। अग्रवालजी अपनी अटैची उस युवकके सुपुर्दकर

दोनों बाथरूमकी ओर चल दिये।

'आप जाइये, मैं यहीं खड़ा हूँ, किसी प्रकारकी चिन्ता न करें।' युवकने कहा।

दोनों प्रतीक्षालयकी भीड़में ओझल हो गये। मिसेज अग्रवालने अपना पर्स अग्रवालजीको दिया और बाथरूमको चली गयीं। बाथरूमसे आकर दोनोंने मस्तीके साथ एक होटलमें प्रवेशकर चाय-नाश्ता किया एवं प्यारभरी कुछ बातें कीं। इसमें उनको लगभग पैंतालीस मिनट लग गये। इतनी देरमें बसस्टैण्डसे दो-चार गाड़ियाँ छूट गयी थीं और दो-चार नयी आ गयी थीं, उसी दौरान वह युवक मित्र अग्रवालकी अटैचीसहित किसी चलती बसमें चढ़कर रवाना हो गया था।

थोड़ी देर बाद अग्रवालजी युवकके लिये भी एक समोसा लेकर पत्नीके साथ अपने निश्चित स्थानपर आये, उस स्थानपर वह युवक उनको नहीं मिला और न ही उन्हें अपनी अटैची दिखायी दी। इधर-उधर निगाह डाली, दूर-दूरतक प्रतीक्षालयके बाहर-भीतर सभी जगह खोजा, पर निराशा ही हाथ लगी। दिल धड़कने लगा, चेहरेकी सारी खुशियाँ इस थोड़ी ही देरमें गायब हो गयीं, पसीना छूटने लगा। गला सूखने लगा, घबराहट बढ़ने लगी। इतनेमें एक पास बैठी महिलाने पूछा—बाबूजी! क्या खोज रहे हैं?

यहाँ एक आदमी अटैची लेकर बैठा था न? अग्रवाल ने पूछा।

'वह तो अभी थोड़ी देर पहले एक बसमें बैठकर चला गया', कह रहा था 'साहब बादमें आ जायँगे।' महिलाने उत्तर दिया।

कौन-सी बस थी? कहाँ जा रही थी?

पता नहीं बाबू, मैं तो अनपढ़ हूँ, पर हाँ, एक आदमी 'जबलपुर-जबलपुर' बोल रहा था। उस महिलाने कहा।

अग्रवालका मुँह उतर गया, पैरोंतलेसे जमीन खिसक गयी, दिलकी धड़कन बढ़ गयी। पर अब क्या करें, अग्रवालने टिकटघरपर मालूम किया, उस गाड़ीको छूटे लगभग आधे घण्टेसे भी अधिक समय हो गया था।

अग्रवाल हाथ मलते रह गये। अटैची ही सब कुछ थी। उसीमें दोनोंके नये-पुराने कपड़े एवं पत्नीके सभी जेवर जो लगभग १५ तोलेके रहे होंगे और भी कई कीमती सामान था। केवल नगद दो-तीन हजार रुपये ही पासमें बचे थे।

'पुलिसमें रिपोर्ट कर दो'—पत्नीने कहा। पुलिसमें रिपोर्टसे भी क्या होगा? अब अटैची मिलना तो है नहीं। फिर आजकलकी पुलिस भी ऐसी कहाँ है, जो आपके सामानकी खोजबीन तत्परतासे और कर्तव्य समझकर करे। अग्रवालने उदास भावसे कहा।

दोनों खाली हाथ हो गये, मन मसोसकर रह गये। अपना दुःख कहें भी तो किससे कहें। दोनों अपनी गलतीका अहसास करते रहे। वह दोस्त नहीं चोर था, जो ट्रेनमें ही उनका साथी बन गया था। कितना मीठा बोल रहा था? कितना खर्चा कर रहा था? पर हम मूर्ख थे कि उसकी चालाकीको सहानुभूति समझ बैठे और हम ही उसे अपनी अटैची देकर बेफिक्र हो गये थे। हमें ऐसा नहीं करना था, पर अब पछतानेसे क्या होता? दोनोंकी सारी मस्ती उतर गयी, प्यारकी बातें भूल गये। मैडमकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। आवाज भारी हो गयी, शरीर शिथिल पड़ गया, पैरोंकी गति नष्ट हो गयी। अटैचीमें क्या-क्या था, सभीकी स्मृति हृदयपर अंकित होने लगी थी, पर क्या करे? सिसकियाँ भरने लगी।

कहने लगी, घर जाकर घरवालोंसे क्या कहेंगे? क्या मुँह दिखायेंगे? कैसे इस कमीको पूरा करेंगे?

अग्रवालने कहा—'अब हम आगर नहीं, पहले दो-चार दिनके लिये राजगढ़ चलकर रहेंगे, फिर अगले रविवारको आगर चलेंगे, वहाँ सब ठीक हो जायगा।'

मैडमने भी 'हाँ' कर दी और दोनों छोटा-सा मुँह लेकर राजगढ़की बससे अपनी मंजिल तय करने लगे। अब चेहरेपर वह हँसी-मस्ती नहीं थी। गहरे विचारोंमें डूबे दोनों चुपचाप अपनी यात्रा कर रहे थे।

सोच रहे थे—'नये दोस्त और पुराने दुश्मनसे सावधान ही रहना चाहिये।'

तीर्थ-दर्शन—

महाशक्ति आदिपीठ विन्ध्यवासिनी

(श्रीदीनानाथजी दुबे)

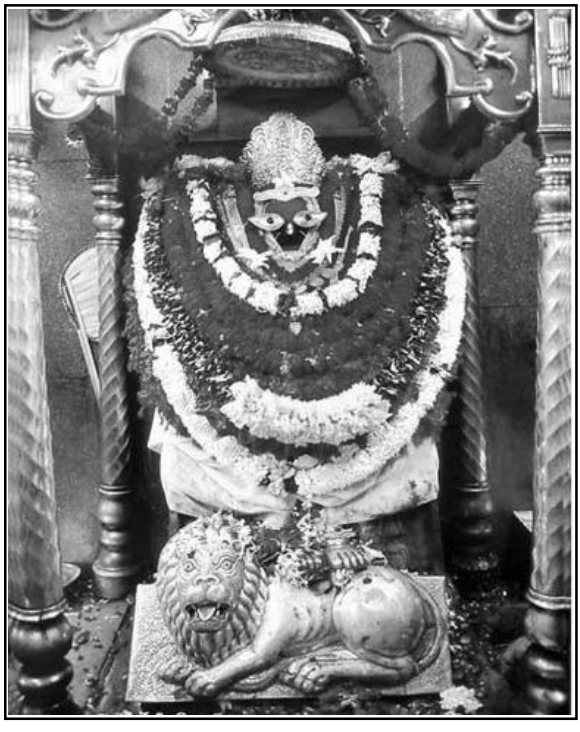

भारतवर्षमें भगवती दुर्गाके शक्तिपीठ अनगिनत हैं। इनमेंसे १२ आदिपीठ (त्रिपुरारहस्य), २६ शक्तिपीठ (कालिकापुराण), ५१ शक्तिपीठ (शिवमहापुराण), ५२ शक्तिपीठ (मार्कण्डेयपुराण), १०८ शक्तिपीठ (देवीभागवत)-में वर्णित हैं। सर्वाधिक शक्तिपीठ पश्चिम बंगालमें हैं। श्रीलंका, नेपाल, पाकिस्तानमें भी प्रमुख शक्तिपीठ हैं। इन शक्तिपीठोंमें विन्ध्याचलपर्वतके सायेमें स्थित विन्ध्याचलधाम प्रमुख है। श्रीदुर्गासप्तशतीके एकादश अध्यायके ४२वें श्लोकमें कहा गया है—

नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा।
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी॥

त्रिपुरारहस्यमें प्रधान देवी विग्रहके १२ स्थान बताये गये हैं और उनमें विन्ध्याचल भी एक है। इन १२ मुख्य शक्तिपीठोंमें कामाक्षी (कांची), मलयगिरिपर भ्रमराम्बा देवी (आन्ध्र प्रदेश), कन्याकुमारी (तमिलनाडु), अम्बादेवी (गुजरात), महालक्ष्मी (कोल्हापुर—महाराष्ट्र), कालिका (उज्जैन—मध्यप्रदेश), प्रयागराजमें ललितादेवी, मिर्जापुरमें विन्ध्यवासिनी एवं वाराणसीमें विशालाक्षी (उत्तरप्रदेश), मंगलावती (गया—बिहार), महाकाली (कोलकाता), गुह्यकेश्वरी (नेपाल) परिगणित हैं।

शताब्दियोंसे माँ कौशिकी विन्ध्यवासिनी महाशक्तिके रूपमें आस्थाका पीठ बनी हुई हैं। महर्षि व्यास और पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिरने भी संकटके समय भगवती कौशिकी देवीके त्रिगुणात्मक स्वरूपकी अभ्यर्थना की है। गंगातटपर विन्ध्याचलपर्वतके सायेमें लगभग सात किलोमीटर क्षेत्रमें फैला विन्ध्याचल जाग्रत् शक्तिपीठ है। यहाँ देवी दुर्गाके तीन रूपों—महालक्ष्मी, महासरस्वती और महाकालीके सिद्ध मन्दिर हैं, जहाँ आश्विन और चैत्रमें नवरात्रके अवसरपर शक्ति-उपासकोंकी अपार भीड़ दर्शनार्थ उमड़ पड़ती है। शैव एवं वैष्णव सम्प्रदायोंमें भी इस शक्तिपीठको अत्यन्त श्रद्धासे देखा जाता है। तान्त्रिक सम्प्रदायमें विन्ध्याचलको साधनाके लिये विशेष पवित्र माना गया है। वैसे तो बारहों महीने यहाँ देशके कोने-कोनेसे तीर्थयात्री आते रहते हैं, लेकिन आश्विन और चैत्रमासकी नवरात्रिके दिनोंमें इस स्थानकी छटा द्विगुणित हो जाती है, जब श्रद्धालुओंका अपार जनसमूह एक स्वरमें 'जय बोलो भगवती विन्ध्यवासिनीकी' के तुमुल नादसे आकाशको गुंजायमान कर देता है। इन दिनों इतनी भीड़ होती है कि मन्दिरमें देवीके दर्शनके लिये भक्तोंको हाथमें चुनरी, नारियल आदि लिये घण्टों इन्तजार करना पड़ता है, तब कहीं जाकर दर्शन हो पाता है। नवरात्रिके दिनोंमें अनुष्ठानकी पूर्ति और भगवतीकी कृपाप्राप्तिके लिये सहस्रोंकी संख्यामें दूर-दराजसे आकर महात्मा, वेदपाठी, तान्त्रिक और साधु-सन्त नौ दिन रहकर अहर्निश पूजा, उपासना और ध्यानमें तत्पर रहते हैं।

विष्णुपुराण, अग्निपुराण, श्रीमद्देवीभागवतपुराण, श्रीदुर्गासप्तशती आदिमें विन्ध्याचलको साधनाके लिये अत्यन्त पवित्र माना गया है। दुर्गासप्तशतीमें भगवतीने स्वयं कहा है कि देवताओ! वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाइसवें

युगमें शुम्भ और निशुम्भ नामके दो अन्य महादैत्य उत्पन्न होंगे, तब मैं नन्दगोपके घरमें उनकी पत्नी यशोदाके गर्भसे अवतीर्ण होकर विन्ध्याचलमें जाकर रहूँगी और उक्त दोनों असुरोंका नाश करूँगी। शुम्भ-निशुम्भके हननकी कथा वामनपुराणके ५६वें अध्यायमें भी आती है।

अग्निपुराणमें विन्ध्य-माहात्म्यकी कथा माता पार्वतीके पूछनेपर भगवान् शंकरने इस प्रकार बतायी थी—एक बार कलिके प्रभाव एवं सन्तापसे पीड़ित होकर अनेक जीव महर्षि शौनकके नेतृत्वमें ब्रह्माजीके पास गये और उनसे निवेदन किया कि हमलोग कलियुगके पापाचारोंसे भयभीत होकर आपकी शरणमें आये हैं। हमें ऐसा स्थान बतायें, जहाँ मानव-कल्याणके लिये हम सभी तप कर सकें। ऋषियोंकी बात सुनकर ब्रह्माजीने कहा—'हे ऋषियो! आप लोगोंको मैं यह चक्र देता हूँ। यह चक्र जहाँ कुंठित हो जाय, वही स्थान आपकी साधनाके लिये अनुकूल होगा।' ब्रह्माजीके आदेशानुसार ऋषि चक्र लेकर घूमते रहे और जब इस क्षेत्रमें पहुँचे तो चक्र कुंठित हो गया।

श्रीमद्देवीभागवतके दशम स्कन्धमें एक और कथा आती है। इस कथाके अनुसार मनुने क्षीरसमुद्रके तटपर देवीकी घोर तपस्या की। जब सौ वर्ष बीत गये, तब भगवती उनके सामने प्रकट हुईं और उन्होंने मनुजीसे वर माँगनेको कहा। मनुजीने सारस्वत मन्त्र जपनेवालोंके लिये भोग-मोक्षकी सुलभता, जातिस्मरता (जन्मान्तर-ज्ञान), वक्तृत्व सौष्ठव (सद्भाषण कला) आदिका वर माँगा। भगवतीने 'एवमस्तु' कहकर उन्हें निष्कंटक राज्यका भी वर दिया और वे विन्ध्याचलपर चली आयीं और विन्ध्यवासिनी कहलायीं।

पश्यतस्तु मनोरेव जगाम विन्ध्यपर्वतम्॥

× × × × ×

लोकेषु प्रथिता विन्ध्यवासिनीति च शौनक।

देवीका पूजन, दर्शन एवं चरित्र-श्रवण शत्रुनाशक, जयप्रद तथा ज्ञानवर्धक है। वे उपासकोंकी समस्त इच्छाओंको पूर्ण करती हैं। महाभारतकालमें शक्तिकी उपासना भलीभाँति की जाती है। दुर्गा भवानीकी स्तुति धर्मराज युधिष्ठिरने उस समय की थी, जब वे घोर विपत्तिमें विराटनगरमें रह रहे थे। महाभारत-युद्धके प्रारम्भ होनेसे पहले श्रीकृष्णने अर्जुनसे भगवती विन्ध्यवासिनीकी भक्ति और स्तुति करनेको कहा था। अर्जुनकी यह स्तुति विन्ध्यवासिनी-स्तुतिके रूपमें प्रसिद्ध है (भीष्मपर्व, अध्याय-२३)।

ऋषियोंने उपासनाके तीन मार्ग बताये हैं—सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। यहाँ देवी-पूजा तीनों प्रकारसे होती आयी है। सात्त्विक उपासक अपनी प्रकृतिके अनुसार पत्र, पुष्प, फल, गन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे, राजसिक उपासक अपनी भावना एवं सामर्थ्यके अनुसार छत्र, चामर, सुवर्ण आदिसे और तामसिक उपासक अपने संस्कारोंके अनुसार मद्य, मांस तथा तामसी पदार्थोंसे पूजा-अर्चना करते हैं। देवीकी ये उपासना-पद्धतियाँ दक्षिण और वाममार्गके नामसे जानी जाती हैं।

विन्ध्यमाहात्म्यकी अनेक कथाएँ हैं, जिनके अनुसार इस क्षेत्रका माहात्म्य असीम एवं अनन्त है। जनश्रुति है कि स्वयं भगवान् विष्णु और लक्ष्मीजीने इस क्षेत्रमें शिवजीकी कठोर तपस्या की थी। शिवजीने विष्णुजीको चतुर्भुजीरूप तथा लक्ष्मीजीको भुवनमोहिनीरूप प्रदान किया था। विष्णुजीने नारायणसरोवरमें भगवान् शिवकी पूजा की थी। यह नारायणसरोवर तारकेश्वर महादेवके पश्चिममें था, जो अब गंगाजीमें समा गया है। इसी तरह महालक्ष्मीकुण्डके बारेमें किंवदन्ती है कि लक्ष्मीजीने यहाँ शिवाकी उपासना की थी। वैसे भी विन्ध्याचलक्षेत्र वाल्मीकि, वसिष्ठ, अगस्त्य, भर्तृहरि तथा तान्त्रिक सम्प्रदायके योगियों—बाबा मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, बालानाथ, महानाथ, अघोरनाथ, मन्मथनाथ आदिकी तपोभूमि रही है। आज भी इस क्षेत्रमें अगणित कुण्ड, खोह और कन्दराएँ हैं, जो किसी-न-किसी ऋषिकी तपःस्थलीसे सम्बन्धित हैं। ब्रह्माकुण्ड एवं गोकर्णकुण्डका विशेष महत्त्व है। जनजीवनमें ऐसी जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं कि इस क्षेत्रमें कई ऐसे महात्मा हैं, जो सैकड़ों वर्षोंसे

तपस्यामें लीन हैं और किसीको दिखायी नहीं देते। सौभाग्यवश यदि कोई भूला-भटका इन स्थलोंतक पहुँच जाता है, तो वह अद्‌भुत स्मृतियाँ लिये रोमांचित होकर घर लौटता है।

विन्ध्याचलमें देवीके तीन मुख्य मन्दिर हैं—विन्ध्यवासिनी (कौशिकी देवी), महाकाली तथा अष्टभुजा। इन तीनोंके दर्शनकी यात्रा 'त्रिकोण-यात्रा' कहलाती है। इस त्रिकोण-यात्राका बड़ा ही माहात्म्य है। त्रिकोण-यात्रामें तीर्थयात्रियोंको अनेक मन्दिर, खोह, कन्दराएँ एवं कुण्ड मिलते हैं। मन्दिरसे विन्ध्यपर्वतकी दूरी लगभग ४ किलोमीटर है। पर्वतकी गोदमें मन्दिरों, कन्दराओं, खोहों, जलकुण्डों और बावड़ियोंकी बहुलता है। विन्ध्यक्षेत्रमें बावड़ी और कुण्ड-निर्माणका विशेष महत्त्व है। इनमें सीताकुण्ड, भैरवकुण्ड, गेरुआ तालाब आदि मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त जंगला, मंगला, चामुण्डा, पद्मा, भैरवनाथ, पंचमुखी महादेव, रामेश्वर-मंदिर, उलटा पहाड़, सप्त-सागर, भद्रकाली गुफा, रामनामी वृक्ष, दुर्गा खोह, त्रिकाल भैरव, बटुकनाथ, धतूरा बाबाकी गुफा, नागकुण्ड, गोकर्णकुण्ड, रामेश्वरनाथ मन्दिर, मंगलागौरी और तारादेवीका विख्यात तान्त्रिक मन्दिर है। विन्ध्यवासिनी देवीका मुख्य मन्दिर विन्ध्याचलके मध्यमें ऊँचे स्थानपर है। मन्दिरमें सिंहपर खड़ी देवीकी लगभग साढ़े तीन फुटकी प्रतिमा है। विन्ध्यवासिनी देवीको कौशिकी देवी भी कहा जाता है। श्रीदुर्गासप्तशतीमें कथा है कि शुम्भ-निशुम्भ नामक दैत्योंसे पीड़ित देवता देवीकी प्रार्थना कर रहे थे। संयोगसे पार्वतीजी उधरसे निकलीं, तो उन्होंने देवताओंसे पूछा—'आप लोग किसकी स्तुति कर रहे हैं?' उसी समय पार्वतीजीके शरीरसे एक देवी प्रकट हुईं। वे बोलीं—'ये लोग मेरी स्तुति कर रहे हैं।' पार्वतीके शरीरकोशसे निकलनेके कारण वे कौशिकी कहलायीं। उन्होंने ही शुम्भ और निशुम्भको मारा। उनके प्रकट होनेके पश्चात् पार्वतीका शरीर काला पड़ गया, अतः उनका एक नाम काली भी है। मूल मन्दिर विन्ध्यवासिनीदेवीका है, जो प्रातःकालसे रात्रिके प्रथम प्रहरतक दर्शनार्थ खुला रहता है। इस बीच निरन्तर हवन, पूजन, यज्ञोपवीत, मुण्डन आदिके कार्यक्रम चलते रहते हैं।

वस्तुतः ये चामुण्डादेवी हैं। शुम्भ-निशुम्भसे युद्धमें जब देवी क्रुद्ध हुईं, तो उनके ललाटसे भयानक मुखवाली चामुण्डादेवी प्रकट हुईं। उन्होंने शुम्भ-निशुम्भके सेनापति चण्ड-मुण्डका वध कर दिया और रक्तबीज नामक असुरका रक्त पी गयीं। इस क्षेत्रमें कौशिकी देवी विन्ध्यवासिनी कही जाती हैं और चामुण्डा कालीरूपमें कालीखोहमें स्थित हैं। यह स्थान कालीखोह कहा जाता है और विन्ध्याचलसे लगभग तीन किलोमीटर दूर है। विन्ध्यवासिनी मन्दिरसे थोड़ी दूरपर विन्ध्याचलकी श्रेणी प्रारम्भ हो जाती है। यहाँ पहाड़ीपर एक ओरसे चढ़कर दूसरी ओर उतरा जाता है। जाते समय पहले यह महाकाली मन्दिर मिलता है। देवीका शरीर छोटा है, लेकिन मुख विशाल है। यहाँ पास ही भैरवजीका स्थान है। भैरव स्थानसे सीढ़ियाँ प्रारम्भ होती हैं। १२५ सीढ़ी ऊपर गेरुआ तालाब मिलता है। इसका जल सदा गेरुए रंगका रहता है। यात्री लोग उसमें अपने कपड़े रँग लेते हैं। यहाँ श्रीकृष्ण मन्दिर है। उससे लगभग सौ सीढ़ियाँ उतरनेपर सीताकुण्ड तथा सीताजीके चरणचिह्न मिलते हैं। सीताकुण्डके पास ही एक झरना है, जिसकी दूसरी तरफ अष्टभुजा मन्दिर है। गेरुआ तालाब और अष्टभुजा मन्दिरके बीचमें सीताकुण्ड और भैरवकुण्ड हैं, जिनका जल अत्यन्त स्वास्थ्यवर्धक माना जाता है। लोग यहाँ स्वास्थ्य-लाभके लिये आते हैं और इन कुण्डोंका जल पीते हैं। अष्टभुजा देवीके पूर्वमें रामनामी नामका वृक्ष है। इस वृक्षसे जो भी शाखा निकलती है, वह राम-नामके आकारकी बन जाती है। भद्रकाली, दुर्गाखोह, धतूराबाबा आदिकी गुफाओंमें जानेसे शरीरमें रोमांच उत्पन्न हो जाता है। इक्का-दुक्का यात्रीको द्वारसे ही लौटना पड़ता है। इन गुफाओंमें देवी-देवताओंकी मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। अधिकतर मूर्तियाँ त्रिकाल भैरव, बटुकनाथ, हनुमान् और महाकालीकी हैं। इनसे स्पष्ट होता है कि

यह स्थान प्राचीनकालमें तान्त्रिक सिद्धोंकी तपोभूमि था। समीप ही स्थित तारादेवी मन्दिरमें आज भी कपाल, खप्पर आदिसे पूजा की जाती है।

कालीखोहसे अष्टभुजा मन्दिर लगभग डेढ़ किलोमीटरकी दूरीपर है। इन अष्टभुजा देवीको कुछ लोग महासरस्वती भी कहते हैं। विन्ध्यवासिनीको लोग महालक्ष्मी मान लेते हैं और इस प्रकार त्रिकोणयात्राको महालक्ष्मी, महाकाली और महासरस्वतीकी यात्रा कहते हैं। कहा जाता है कि द्वापरमें वसुदेवजी श्रीकृष्णको नन्द-भवनमें रख आये थे और यशोदाकी नवजात कन्या उठा लाये थे। कंस जब नवजात कन्याको पत्थरपर पटकने लगा तब कन्या उसके हाथोंसे छूटकर आकाशमें चली गयी और वहाँ उसने अपना अष्टभुजरूप प्रकट किया। वही श्रीकृष्णानुजा यहाँ विन्ध्याचलपर्वतपर अष्टभुजा या अष्टभुजी देवीके रूपमें विराजमान हैं।

अष्टभुजा मन्दिरके पास एक गुफामें कालीदेवीका दूसरा मन्दिर है। वहाँसे चलनेपर भैरवकुण्ड तथा भैरवनाथजीका मन्दिर मिलता है। पास ही मच्छन्दरकुण्ड है। पहाड़से उतरनेपर शीतला मन्दिर तथा एक बड़ा सरोवर मिलता है, जिसके पास हनुमान्‌जीका मन्दिर है। विन्ध्याचलतक आनेमें रामेश्वर मन्दिर मिलता है। इसके उत्तर गंगातटपर रामगया स्थान है, जहाँ श्राद्ध किया जाता है। अष्टभुजा मन्दिरसे आगे एक किलोमीटरसे कम ही दूरीपर जंगलमें मंगलादेवीका मन्दिर है। जनश्रुति है कि इनकी स्थापना भगवान् रामने की थी।

विन्ध्यवासिनीदेवीके दर्शनके पश्चात् जब यात्री विन्ध्यपर्वतपर त्रिकोण-यात्राके लिये निकलते हैं, तो बड़ा ही आनन्द आता है। यत्र-तत्र पुरातत्त्व विभागके बोर्ड लगे हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि यदि इन स्थानोंकी खुदाई की जाय तो विस्मृतिके गर्भमें सोये बहुतसे रहस्योंपरसे पर्दा उठ सकता है। पर्वतपर गेरुआ तालाबके साये में अनेकानेक कहानियाँ हैं, जिनमें मुख्य ***'तेरह पालिया बसे अगोरी, बावन लगे बाजार'*** की कथा ज्यादा प्रचलित है। अगोरी नामकी सुन्दरी किरात कन्याको पानेके लिये यहाँ संग्राम हुआ था। विन्ध्याचल क्षेत्रके धार्मिक महत्त्वके साथ अतीतका इतिहास भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इस क्षेत्रमें भारशिव नाग सम्राट् वीरसेनकी विजयका डंका विक्रमकी दूसरी शतीमें तब बजा था, जब उन्होंने काशीके कुषाण शासक अंगारकको इसी क्षेत्रमें परास्त करके उसे पेशावरतक खदेड़ा था और इस विजयके उपलक्ष्यमें काशीमें गंगाघाटपर दशाश्वमेध यज्ञ किया था। इतिहास बताता है कि शुंग वंशके पतन और गुप्त वंशके उदयके पूर्व कुषाणोंकी सत्ताका मर्दन करनेवाली शक्ति भारशिव नागोंकी थी। भारशिव नागोंने अपनी शक्तिका संचय इसी विन्ध्यक्षेत्रमें किया था। बादमें कुछ दूरीपर कान्तिपुरी बसायी थी, जो आज बिगड़ते-बिगड़ते 'कंतित' रूपमें पायी जाती है। प्रसिद्ध माण्डव्यगढ़ भारशिव नागोंने ही बनवाया था।

कुल मिलाकर विन्ध्याचलकी पर्वतीय खोह एवं कन्दराएँ आज भी रहस्योंका केन्द्रबिन्दु बनी हुई हैं। बहुत-सी ऐसी गुफाएँ हैं, जिनके द्वार शिलासे बन्द कर दिये गये हैं। इन गुफाओंमें प्रकाश और वायुसंचारकी तकनीक अद्‌भुत है और ये दर्शकोंको हैरतमें डाल देती हैं। विन्ध्याचलमें दूर-दराजसे काफी यात्री नियमित रूपसे आते हैं। विन्ध्यपर्वतकी गोदमें बसनेके कारण यह स्थान निस्सन्देह बड़ा ही मनोरम एवं उपयोगी है। इस स्थलके विकासके लिये एक योजनाबद्ध कार्यक्रमकी जरूरत है। इस क्षेत्रमें आये दिन होनेवाले उत्सवोंमें कजली, दंगल, ठंडाई, इक्कोंकी सरपट दौड़ आदिका अपना एक अलग ही आकर्षण है। कुल मिलाकर विन्ध्याचलको एक शानदार पर्यटनस्थल बनाया जा सकता है। विन्ध्याचल कस्बा मिर्जापुरसे लगभग १० किलोमीटर उत्तर-मध्य रेलवेकी इलाहाबाद-मुगलसराय मुख्य लाइनपर स्थित है। अब यह एक बड़े कस्बेके रूपमें विकसित हो गया है। मूल रूपसे यह पण्डोंकी नगरी है, जहाँ इनके ६०० से ऊपर परिवार हैं। साधारणत: यात्रियोंको पण्डे अपने घरमें ठहराते हैं। वैसे चार-पाँच धर्मशालाएँ भी यहाँ हैं।

'यह तो बड़ी ही अच्छी बात है'

(श्रीसीतारामजी गुप्ता)

एक बार एक व्यक्ति एक गाय दान करना चाहता था। वह अपने गाँवके पासके एक आश्रममें गया और आश्रमके प्रमुखसे बोला—'महाराज, मैं आश्रमको एक गाय दान करना चाहता हूँ। यदि आप इसे स्वीकार करेंगे तो बड़ी कृपा होगी।' आश्रम-प्रमुखने कहा—'यह तो बड़ी ही अच्छी बात है। गाय आ जानेसे यहाँ रहनेवाले विद्यार्थियों एवं अन्य आश्रमवासियोंको दूध मिलने लगेगा।'

गाय पाकर सभी आश्रमवासी प्रसन्न थे। कुछ दिनोंके बाद गाय दान करनेवाला व्यक्ति पुन: आश्रम आया और कहने लगा, 'महाराज, मैं अपनी गाय वापस लेने आया हूँ। यदि आप मेरी गाय वापस लौटा देंगे तो आपकी बड़ी कृपा होगी।' आश्रम-प्रमुखने कहा, 'यह तो बड़ी ही अच्छी बात है।' यह कहकर उन्होंने बिना कुछ पूछताछ किये बड़े प्यारसे गाय उसके पुराने स्वामीको लौटा दी।

जब वह व्यक्ति अपनी गाय लेकर वापस चला गया तो आश्रम-प्रमुखके एक शिष्यने उनसे पूछा, ''गुरुजी! जब वह व्यक्ति गाय दान करने आया था तब भी आपने यह कहा था—'यह तो बड़ी ही अच्छी बात है' और आज जब व्यक्ति गाय वापस माँगने लगा तो भी आपने कहा—'यह तो बड़ी ही अच्छी बात है।' गाय वापस देनेसे हम सब दूधसे वंचित हो गये। इसमें कौन-सी अच्छी बात है?'' गुरुजीने कहा—'देखो, जब गाय आयी तो दूध देती थी, अत: इससे अच्छी बात और क्या हो सकती थी? गाय दूध देती थी तो उसकी देखभाल भी करनी पड़ती थी। अब गाय वापस चली गयी है तो अब हम सब आश्रमवासियोंको गोबर उठाने एवं गायकी देखभालसे भी मुक्ति मिल गयी है। अत: अब इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है?'

कुछ महीनोंके बाद गाय दान करनेवाला व्यक्ति पुन: आश्रममें आया और कहने लगा—'महाराज! मैंने गाय दानमें देनेके बाद उसे वापस लेकर अच्छा नहीं किया। मैं गायको वापस देने आया हूँ, कृपया गायको स्वीकारकर मेरी भूलको क्षमा करें।' आश्रम-प्रमुखने कहा—'यह तो बड़ी ही अच्छी बात है।' उन्होंने गायको दोबारा आश्रममें रख लिया और अपने शिष्योंको उसकी देखभाल करनेका निर्देश दिया। पता चला कि अब यह गाय दूध भी नहीं देती है। जब व्यक्ति गायको आश्रममें छोड़कर चला गया तो एक शिष्यने प्रतिवाद करते हुए पूछा, 'गुरुजी, अब यह गाय दूध भी नहीं देती है, अत: किसी कामकी नहीं है। अब मुफ्तमें इसका गोबर उठाना पड़ेगा और सेवा करनी पड़ेगी। फिर भी आपने क्यों कहा कि यह तो बड़ी अच्छी बात है? अब इसमें भी कौन-सी अच्छी बात रह गयी है?'

आश्रम-प्रमुखने कहा—गाय दूध नहीं देती तो कोई बात नहीं। दूधके कारण गायकी सेवा करना तो सकाम कर्मकी श्रेणीमें आता है। अब यह दूध नहीं देती तो इसकी सेवा निष्काम कर्मकी श्रेणीमें आयेगी। निष्काम कर्मसे उत्कृष्ट कोई बात हो ही नहीं सकती। वैसे तो गोमाताकी सेवा करना हमारे यहाँ धर्म माना जाता है। गायकी सेवाकर हम सहज ही धर्ममें प्रवृत्त हो सकेंगे। दूसरे गायके गोबरसे तैयार खाद आश्रमके पेड़-पौधों एवं खेतोंमें डालनेके काम आयेगी। फिर कुछ दिनोंके बाद जब यह गाय पुन: ब्यायेगी तो दूध भी स्वत: सुलभ हो जायगा।

वास्तवमें किसी भी घटनाके मुख्यत: दो पक्ष होते हैं, एक सकारात्मक पक्ष और दूसरा नकारात्मक पक्ष। यह हमारे दृष्टिकोणपर निर्भर करता है कि हम किसी भी घटनाको किस रूपमें लेते हैं। उसका सकारात्मक पक्ष देखते हैं या नकारात्मक पक्ष। यदि हम हर घटनाके केवल सकारात्मक पक्षको ही देखते हैं तो हम जीवनमें दु:खोंसे बचे रहकर असीम खुशियाँ प्राप्त कर सकते हैं। जीवनमें सदैव प्रसन्न बने रहनेका एकमात्र यही उपाय है कि हम घटनाओंके केवल सकारात्मक पक्षको ही देखें और आशावादी बने रहें। किसी भी घटनामें केवल प्रत्यक्ष अथवा वर्तमान लाभ देखना हमारी अल्पज्ञता, संकुचित दृष्टि और व्यावसायिकताका द्योतक है।

मन्दिर—भक्तिके द्वार

(डॉ० श्रीगोपाल दामोदरजी फेगडे)

मानव-जातिके इतिहासमें जीव, परमेश्वर और सृष्टि—ये तीन घटक चिन्तनके विषय बने हुए हैं। उनके परस्पर सम्बन्धोंको लेकर संसारमें अलग-अलग धर्म और पंथोंका उदय हुआ है। मानवी शक्तिके परे इस विश्वका संचालन करनेवाली कोई परमशक्ति है और उसकी नम्र भावसे प्रार्थना करनेसे मनुष्यका कल्याण होगा, सुख-शान्ति मिलेगी तथा उसका उद्धार होगा—ऐसी धारणा हर एक धर्ममें पायी जाती है। लोग अपने-अपने धर्मकी मान्यता या श्रद्धाके अनुसार उस सर्वोच्च शक्तिके स्वरूपकी कल्पना करते हैं और उसके आगे नतमस्तक होते हैं, लेकिन उस शक्तिका स्वरूप अदृश्य होनेके कारण उसका दृश्यरूपमें प्रतिनिधिभूत स्वरूप या स्थान तय करते हैं और उसकी प्रार्थना, आराधना या पूजापाठ करते हैं। हिन्दू लोग उसको मन्दिर कहते हैं, जहाँ परमेश्वरकी मूर्तिकी प्रतिष्ठापना की जाती है, मुसलमान मस्जिद कहते हैं, इसाई अपने प्रार्थना-स्थलको चर्च कहते हैं, बौद्धोंका मन्दिर बिहार होता है, पारसी लोग अग्यारी कहते हैं, सिखोंका गुरुद्वारा होता है, इन सबका बाह्यस्वरूप अलग-अलग होता है तथापि उनकी मूल प्रेरणा एक ही होती है। आजतक संसारमें जगह-जगह विविध धर्मोंके प्रार्थना-स्थल प्रस्थापित हुए हैं।

हिन्दू-धर्मकी मान्यता है कि परमेश्वर अवतार धारण करते हैं, जैसे स्वयं श्रीकृष्णभगवान्ने भगवद्गीता (गीता ४।७)-में कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

अर्थात् हे भारत! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब मैं अपने रूपको रचता हूँ अर्थात् प्रकट करता हूँ।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

(गीता ४।८)

अर्थात् साधु पुरुषोंका उद्धार करनेके लिये तथा धर्मकी स्थापना करनेके लिये मैं युग-युगमें प्रकट होता हूँ।

हिन्दू-धर्ममें परमेश्वरके अलावा अन्य देवी-देवता भी हैं, लोग अपनी-अपनी श्रद्धाके अनुसार परमेश्वरके या देवी-देवताओंके मन्दिर निर्माण करते हैं। जो जिसकी भक्ति करता है, उसका फल उसको प्राप्त होता है। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णजी कहते हैं—

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥

(गीता ९।२५)

अर्थात् देवताओंको पूजनेवाले देवताओंको प्राप्त होते हैं, पितरोंको पूजनेवाले पितरोंको प्राप्त होते हैं, भूतोंको पूजनेवाले भूतोंको प्राप्त होते हैं और केवल मेरी भक्ति करनेवाले मुझे ही प्राप्त होते हैं।

मोक्षप्राप्तिकी दृष्टिसे ईश्वरभक्ति ही सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है। केवल परमेश्वरकी भक्तिसे ही जीवके कर्मबन्धन कट जाते हैं।

मन्दिरमें धर्मकृत्य (प्रार्थना, पूजापाठ, प्रवचन, पारायण, भजन-कीर्तन इत्यादि) किये जाते हैं। मन्दिर शब्दके तीन अक्षर तीन अर्थ व्यक्त करते हैं—'म' यानी मंगल, 'दि' यानी दिव्य, 'र' यानी रमणीय। मन्दिर श्रद्धालुओंके लिये एक पवित्र स्थान होता है। वह ऐसा स्थान होता है; जहाँ भक्तके मनको धीरज प्राप्त होता है।

श्रीचक्रधर स्वामीके अनुसार मनुष्यकी जन्मजात प्रवृत्ति 'अधोमति, अधोगति और अधोरति होती है।' (लीलाचरित) जीव जन्मसे ही अज्ञानी और अविद्यायुक्त होता है। जबतक उसके अज्ञानका परदा हटता नहीं, वह मुक्ति नहीं पा सकता। श्रीचक्रधरस्वामीने कहा है **'ज्ञानेविप वैराग्य तें काइ करावें बापेयाः।'** (आचार २२१) अर्थात् ज्ञानके अभावमें वैराग्य क्या कामका? भगवान् श्रीकृष्णजीने कहा है, **'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।'** (गीता ४।३८) अर्थात् इस

संसारमें ज्ञानके समान पवित्र करनेवाला नि:सन्देह कुछ भी नहीं है। ज्ञान और भक्ति परमेश्वरको पानेके (मुक्ति पानेके) दो सोपान हैं। ज्ञानके बिना भक्ति अन्धी होती है और भक्तिके बिना ज्ञान निरुपयोगी होता है। जीवके उद्धारके लिये दोनोंकी आवश्यकता है। मन्दिर दोनोंको प्रेरणा देनेवाले माध्यम होते हैं। मन्दिर लोगोंपर भक्तिके संस्कार करते हैं। वहाँके सन्त-महात्मा उनको ब्रह्मविद्या—शास्त्रका ज्ञान भी देते हैं। भगवान् श्रीचक्रधरस्वामी कहते हैं, **'परमेश्वर भज्युः संबंधु वंद्यु'** (आचार १८५) अर्थात् परमेश्वर भजनेयोग्य है। उसका (अवतारका) स्पर्श होनेवाली वस्तु वन्दनीय है, दूसरे वचनमें कहते हैं, **'एथीचेयां संबंधा गेले तेतुले ओटे गोटे आदिकरौनी तुम्हां नमस्करणीये कीं गाः मा येसनी देमती कैसी डावलीलि'** (आचार १८६) इसका भावार्थ है परमेश्वरके सम्बन्धमें आनेवाले (स्पर्शित) ओटे और गोटे (पाषाण) वन्दनीय हैं तो फिर चेतनाप्राप्त देमती (भक्तके नाम)-को कैसे नजर अन्दाज किया? महानुभाव सम्प्रदायमें ऐसी धारणा है कि परमेश्वर अवतारके सम्पर्कमें आनेवाली वस्तुओं और पाषाणोंमें परमेश्वरका शक्तिनिक्षेप होता है, उसको पंथीय भाषामें 'विशेष' कहते हैं। ये विशेष मन्दिरोंमें रखे होते हैं, वहाँ उनकी पूजा की जाती है।

अन्य देवताओंके मन्दिरोंमें भी उनकी (देवताओंकी) विधिवत् पूजा-अर्चा की जाती है। पूजापाठ करनेसे उन मूर्तियोंमें शक्ति जाग्रत् होती है, ऐसी देवता भक्तोंकी श्रद्धा होती है, देवता भक्तोंको सम्बन्धित देवताओंके फल मिलते हैं।

भारतीय संस्कृतिमें समाज-प्रबोधनकी दृष्टिसे मन्दिरोंका असाधारण महत्त्व है, वे समाजमें धार्मिक अधिष्ठान निर्माण करते हैं, लोगोंके मनमें सौजन्य, समत्व, प्राणिदया, सदाचार, परस्पर प्रेम इत्यादि श्रेयस् (कल्याणकारक) गुण विकसित करते हैं, साथ-साथ शराब, जुआ, चोरी, व्यभिचार, हिंसा इत्यादि प्रेयस् (अकल्याणकारक) दुर्गुणोंसे रोकते हैं। लोगोंको आत्मिक सुख और आत्मकल्याणका मार्ग दिखाते हैं। मन्दिरमें जाकर ज्ञान-श्रवण करनेसे इन्द्रियोंके विकार दूर होते हैं। भारतमें प्राचीनकालसे, राजा-महाराजाओंके जमानेसे, गाँव-गाँवमें छोटे-बड़े मन्दिर बनाये गये हैं। वे सौन्दर्य, संस्कृति और सदाचारके प्रतीक हैं। कुछ मन्दिर तो शिल्पकला तथा स्थापत्यकलाके अद्भुत नमूने हैं।

दुर्भाग्यवश आज भौतिक सुखसाधनोंकी खोजके कारण अधिकतर लोग चिरन्तन आध्यात्मिक सुखका रास्ता भूलकर क्षणभंगुर भौतिक सुखोंके पीछे भाग रहे हैं, लोगोंकी रुचि मन्दिरोंमें कम और सस्ते मनोरंजनके स्थानोंमें ज्यादा हो रही है। यह प्रवृत्ति व्यक्ति तथा समाजके स्वास्थ्यके लिये घातक है। जो मन्दिर जाते हैं, उनमें भी अधिकतर लोग भौतिक फल पानेकी अभिलाषासे जाते हैं, निष्काम भक्ति करनेवाला बिरला ही होता है।

यद्यपि यह सच है कि मन्दिर संस्कृति-सम्वर्धनकी पाठशालाएँ हैं, परंतु आज विडम्बना यह है कि भारतमें कुछ पूजा-स्थलोंको मतलबी राजनीतिज्ञोंने कलह और हिंसाके कारण बना दिये हैं। उससे धर्मका उत्थान होनेकी बजाय हनन हो रहा है। असलमें धार्मिक स्थल तो भाईचारेके प्रतीक होने चाहिये। भगवान् श्रीचक्रधरस्वामीका यह वचन, **'वैरीयांचा देवो झाला तरी काई दगडे हापौनी फोडावा?'** (लीलाचरित्रपूर्व ३९१) अर्थात् 'क्या शत्रुके देवको (आराध्यदैवतको) पत्थरसे तोड़ना चाहिये?' कभी नहीं। आज याद करनेकी सख्त जरूरत है, हिन्दू-धर्म मूलत: अहिंसक और सहिष्णु है, वैसे तो सभी धर्म अहिंसा तथा भाईचारेका ही पाठ पढ़ाते हैं, लेकिन अज्ञान, अन्धविश्वास और नीयत बिगड़नेके कारण कुछ लोगोंका धर्मके विपरीत आचरण होने लगता है।

कुछ मन्दिरोंमें या पूजा-स्थलोंमें भावुक भक्तोंके दानसे करोड़ों रुपयोंका धन जमा हो रहा है। उसका उपयोग अस्पताल, स्कूल, धर्मकी शिक्षा, वृद्धाश्रम इत्यादि समाजोपयोगी कामोंके लिये होना चाहिये, कहीं-कहीं वैसे काम हो भी रहे हैं, लेकिन कुछ उपसना-स्थलोंमें उस राशिके अपहरण और दुरुपयोगकी भी वार्ताएँ आती हैं।

परमेश्वर, धर्म, मन्दिर आदि श्रद्धा एवं आचरणके

विषय हैं, संस्कृतका निम्नलिखित श्लोक इस बातका यथार्थ वर्णन करता है—

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी॥

ईश्वर, तीर्थ, ब्राह्मण, मन्त्र, ज्योतिषी, वैद्य, गुरु—इनके प्रति जैसा भाव होता है, वैसी सिद्धि प्राप्त होती है। श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं—'**श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं.....**' (गीता ४।३९) अर्थात् श्रद्धावान् पुरुषको ही [परमेश्वरका] ज्ञान प्राप्त हो सकता है। भगवान् श्रीचक्रधरस्वामीने कहा है—'**आचरे तयाचा धर्मुः**' (आचार ५२) अर्थात् आचरण करनेवालेका ही धर्म होता है, '**धर्मो रक्षति रक्षितः**' अर्थात् धर्म उसीका रक्षण करता है, जो धर्मका रक्षण (आचरण) करता है। इस सन्दर्भमें निम्नलिखित कथा उद्बोधक है—

एक मन्दिर था, उसमें एक पुजारी रहता था। वह रोज परमेश्वरकी मूर्तिको स्नान कराता था, धूप-दीप अगरबत्ती और फूलों-फलोंसे भगवान्‌की पूजा करता था। पोथी-पुराण पढ़ता था, लेकिन उसके मनमें हमेशा मन्दिरके सामने रहनेवाली सुन्दर वेश्याके लिये विचार आते थे। उसकी नजर हमेशा वेश्याके शरीरपर घूमती थी, वेश्याके घर आनेवाले लोगोंसे वह द्वेष करता था। उनकी तुलनामें खुदको अभागा समझता था। उसका शरीर मन्दिरमें और चित्त वेश्याके घरमें घूमता था। इसके विपरीत उस वेश्याके मनमें अपने व्यवसायके प्रति घृणा थी। उसके मनमें हमेशा ईश्वरके ही विचार आते थे, अपनी देह लोगोंको समर्पित करते वक्त भी उसका मन ईश्वरस्मरणमें खो जाता था। इत्तफाकसे पुजारी और वेश्या दोनोंकी एक साथ मृत्यु हुई। वेश्याको स्वर्गमें जगह मिली, लेकिन पुजारी नरकमें डाला गया। इस कथाका तात्पर्य यह है कि मनमें अगर ईश्वर और धर्मके प्रति शुद्ध भाव न हो तो बाहरी दिखावेका कोई उपयोग नहीं। ईश्वर अन्तर्यामी है, कोई भी उसको धोखा नहीं दे सकता। सारांश यह है कि श्रद्धा, भाव, ज्ञान, भक्ति और आचरणके बिना धर्म और धार्मिक स्थल (मन्दिर, मस्जिद, चर्च इत्यादि) खोखले हैं।

प्रेरक-प्रसंग—

जीवनका लक्ष्य—प्रभुभक्ति एवं जनसेवा

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक परम धार्मिक, श्रीकृष्णभक्त, तेजस्वी राजनेता तथा पत्रकार थे। वे प्रतिदिन स्नानके बाद माथेपर तिलक लगाकर श्रीकृष्ण एवं गणेशजीकी पूजा-अर्चना विधि-विधानसे किया करते थे। पुणेमें केसरीके कार्यालय जाते समय रास्तेमें गणेशजीके दर्शन अवश्य करते थे। उन्हें राजद्रोहके आरोपमें सजा सुनाकर मांडलेकी जेल भेजा गया। जेलमें उन्होंने श्रीमद्भगवद्गीताका गहन अध्ययनकर पुस्तकें लिखीं।

मांडले जेलसे मुक्त होनेके बाद तिलकजी पुणे लौटे तो उनका भव्य अभिनन्दन किया गया। एक कांग्रेसी नेताने मुसकुराते हुए तिलकजीसे पूछा—यदि भारत स्वाधीन हो गया तो आप प्रधानमन्त्री या गृहमन्त्रीमेंसे किस पदको स्वीकार करना पसन्द करेंगे? तिलकजीने उत्तर दिया—मैंने अपने धर्मशास्त्रों एवं गीतासे प्रेरित होकर मातृभूमिको विदेशी अंग्रेजोंसे स्वाधीन करानेके उद्देश्यसे स्वाधीनता आन्दोलनमें भाग लिया है। जेलमें जब मैंने गीता, पुराणों तथा उपनिषदोंका अध्ययन किया तो मैं इस परिणामपर पहुँचा कि जीवनका अन्तिम लक्ष्य प्रभुभक्ति एवं जनसेवा ही है। राजनीतिके पचड़ेमें पड़कर न भक्ति हो सकती है, न निःस्वार्थसेवा। इसलिये मैं स्वराज्य मिलते ही अपना तमाम समय भगवान्‌की भक्ति एवं सत्साहित्य और शास्त्रोंके अध्ययनमें लगाकर अपना जीवन सार्थक बनाऊँगा।

श्रीतिलकजीका सन् १९२० ई० में ही निधन हो गया। क्या वर्तमान राजनीतिज्ञ उनकी भावनाका अनुसरण कर रहे हैं? —श्रीशिवकुमारजी गोयल

वैवाहिक जीवनके प्रारम्भिक पल

(ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वर चैतन्यजी महाराज, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ)

शर्तों से शुरू शिकायत पे खतम,
जिन्दगी तू बता कैसे तेरे करम।
दिल दुखाकर दीवारों पै सजदा करे,
कैसा इंसा हुआ बेहया बेशरम॥

हमारी जिन्दगीका चलन ही बिगड़ गया है। विवाह संस्कार नहीं, समझौता हो गया है। दो दिलोंके जोड़नेकी बात करनेवाले दो दल बनाकर लोभ, तृष्णा, याचना तथा चतुराईके दलदलमें डूबकर शर्तोंके पासे फेंकते जाते हैं। इस पवित्र संस्कारात्मक सम्बन्धको भी खिलवाड़ बना डालते हैं। वर-पक्षका दल अधिकाधिक पानेकी लालसामें कन्या-पक्षको निचोड़ लेना चाहता है तो अब कन्या-पक्ष भी कोई कसर छोड़नेके मूडमें नहीं दीखता। ध्यान रखना, जो सम्बन्ध शर्तोंसे शुरू होते हैं, उनका अन्त शिकायतके संग हो जाता है। जितनी अधिक शर्तें, उतनी अधिक शिकायतें। जितनी अधिक शिकायतें, उतनी अधिक अशान्ति। जितनी अधिक अशान्ति, उतना अधिक कलह। जितना अधिक कलह, उतना ही जीवन नरकरूप, दुःखरूप विनाशोन्मुख हो जाता है और जितनी कम शर्तें उतनी ही कम शिकायतें और उतना ही जीवनमें सहजता, शान्ति और सुकून होगा। ठीक है, दो अपरिचित परिवार अथवा दो व्यक्ति एक साथ चलना चाहते हैं तो वैचारिक स्तरको समझनेके लिये तथा अग्रिम जीवनमें सम्बन्ध स्थायित्वके साथ सहजता-प्राप्तिके लिये कुछ-न-कुछ मर्यादा निर्धारित की जानी ही चाहिये। उसमें मुख्यतया प्रारम्भ होता है दहेजके लेने-देनेसे। देखो भाई! अतिवादकी आवश्यकता नहीं है, बातको समझना चाहिये। न तो हम दहेजके अन्धसमर्थक हैं, न ही अन्धविरोधी। जो सत्य है, शास्त्रसम्मत है, परम्परासम्मत है, वही कहने जा रहे हैं।

दहेज माँगना, दहेज मिले—ऐसी कामना मनमें रखना पाप है। कई लोग खुलकर माँगते तो नहीं, परंतु ऐसी परिस्थितियाँ बनाते जाते हैं कि उनका रोम-रोम याचककी भूमिका निभाता है, बस वाणी मौन होती है। दहेज देना पाप नहीं है, अपितु यह तो हमारी सनातन परम्परा है। वेद-पुराणसम्मत है। कन्याके माता-पिता अपनी शक्ति-सामर्थ्यके अनुसार कन्याकी प्रसन्नताके लिये तथा अपने मनके परितोषके लिये स्नेहपूर्वक बिना किसी दबावके जो भी सम्भार वस्त्र, भूमि, अलंकार, वाहनादि देना चाहें दें। हिमवान्‌ने पार्वतीजीके विवाहमें ***'दायज दियो बहुभाँति'*** (मानस), मनु-शतरूपाने भी कर्दम-देवहूतिके विवाहके समय बहुत दहेज दिया।

शतरूपा महाराज्ञी पारिबर्हान् महाधनान्।
दम्पत्योः पर्यदात् प्रीत्या भूषावासः परिच्छदान्॥

(श्रीमद्भा० ३। २२। २३)

प्रीत्या=प्रसन्नता एवं प्रेमपूर्वक, **पर्यदात्**=अच्छे ढंगसे बहुत दिया।

देवकी-वसुदेवके विवाहके समय दहेजकी मात्रा अद्‌भुत है, भगवान् शिव और माता पार्वतीके विवाहके समय दहेजकी देयता है, दहेज देना अनुचित नहीं, निषिद्ध नहीं है, परंतु कन्याके पिताको त्रास देकर बलात् लेना पाप है। अपने नामके लिये, मिथ्या दिखावेके लिये, भूमि बेचकर अथवा कर्जा लेकर दहेज देना भी उचित नहीं हो सकता। कन्यापक्षके सुबुद्ध जन तथा वरपक्षके सुबुद्ध जन परस्पर दो सेनाओंकी तरह व्यवहार न करके दो विचारधाराओंके समादरहेतु मिलें। परस्पर एक-दूसरेका मन तथा मान बढ़ानेके लिये मिलें। जैसे दो नदियोंकी धाराएँ परस्पर मिलकर एक होती हैं और अधिक वेगसे सागरकी ओर बढ़ती हैं। वैसे ही दो पारिवारिक परम्पराएँ, दो जीवनधाराएँ मिलकर एक होकर जीवन-लक्ष्यको सहजता और सुगमतासे प्राप्त करें। विवाह एक पवित्र संस्कार है, इसे अपेय-पानसे, अभक्ष्य-भक्षणसे प्रदूषित करना घोर पाप है। इस अवसरपर हमारे इष्टदेव, कुलदेव, पितृदेव प्रसन्नतापूर्वक कृपा करनेकी भावना रखते हैं, परंतु जब अभक्ष्य पदार्थों (मांस, मदिरा, लहसुन, प्याज आदि निषिद्ध पदार्थों)-के सेवनसे मतवाले हुड़दंग मचाते लोगोंको देखते हैं, तो

दुखी मनसे खिन्न होकर लौट जाते हैं। इस पवित्र संस्कारकी यथासम्भव मर्यादा बनाये रखनेमें ही हमारा-आपका कल्याण है। सादगी हो, सात्त्विकता हो, पवित्रता हो, सर्वत्र प्रसन्नताका वातावरण हो, विशुद्ध विधिसे संस्कार सम्पन्न कराया जाय, जिससे कि नवदम्पतीके आगामी जीवनकी यात्रा सानन्द निर्विघ्न सम्पन्न हो सके।

सबको दान-मानसे सन्तुष्ट करके विनम्रतापूर्वक उभय पक्षके लोग परस्पर प्रीतिसहित विदा हों। ऐसा न हो कि देनेवाला कम-से-कम देनेके भावसे खींचतान करे और लेनेवाला अधिकाधिक पानेकी लालसासे खींचतान करे। विवाद तो हो, परंतु ऐसा हो कि जिसमें प्रेम-अनुरागकी वृद्धि हो। खानेवाला हाथ जोड़े कि नहीं खा सकता और खिलानेवाला भी हाथ जोड़े कि एक और-एक और। लेनेवाला हाथ जोड़े कि नहीं, जो मिला वह बहुत है और देनेवाला हाथ जोड़े कि कुछ न कर सका, और लीजिये। अच्छा ये बतायें कि देनेवाला बड़ा होता है या लेनेवाला। निश्चित है कि दाता ही बड़ा होता है, होना भी चाहिये, क्योंकि देनेवालेका हाथ ऊपर होता है और लेनेवालेका हाथ नीचे होता है। ऐ वरपक्षके लोगो! थोड़ा तो विचार करो! कन्याके पिताके घर तुम याचक बनकर आये हो, भिखारीमें (याचकमें) अकड़ होना, शर्त होना, शिकायत होना—ये कहाँका न्याय है? अरे भाई! कन्याके पिताको धन्यवाद देना चाहिये। जीवनभर उनका अहसानमन्द रहना चाहिये, बेचारेने पाल-पोसकर पढ़ा-लिखाकर अपने कलेजेका टुकड़ा तुम्हें सौंप दिया। जिसने अपनी पुत्री तुमको दे दी और क्या उसकी जान लोगे? रुपया-पैसा, सोना-चाँदी, गाड़ी-घोड़ा उस कन्यासे अधिक महत्त्वपूर्ण है क्या? वरपक्षको कन्यापक्षका आभारी होना चाहिये। कभी-कभी तो ऐसी-ऐसी अमानवीय घटनाएँ घट जाती हैं, कन्याका पिता बेचारा रोकर, अपनी पगड़ी वरपक्षके आगे रख देता है और वरपक्षके लोग आवेश और अज्ञानमें उसका अपमान करनेमें ही खुश होते हैं। भाई! ध्यान रखना, ये दुनिया बड़ी विचित्र है, आज तुम वरपक्षमें हो, कलको आप भी कन्यावाले बनोगे, तब क्या होगा? अतः सोच-समझकर ही व्यवहार करना चाहिये। नवदम्पतीका नवजीवनमें नवप्रवेश मांगलिक हो, इसके लिये घरके बड़े-बुजुर्गोंको चाहिये कि परायी बेटीको अपने प्रेमसे सींचकर उसे सान्त्वना दें, जिससे उसे नयी जगह आनेपर भी अपने घरकी याद न आये। जैसे एक पौधा उखाड़कर दूसरी जगह लगाया जाता है, तब उसे सावधानीपूर्वक पर्याप्त खाद, पानी और देखभालसे रखते हैं। दो-चार दिनमें पौधा उस जलवायुमें खुदको ढालकर जड़ जमा लेता है, फिर उसका मुरझाना खत्म और चेतना आती है, उसके पत्ते मुसकराने लगते हैं, ठीक वैसे ही बहूको पुत्री-जैसा प्यार दें, उसकी उदासीनता खत्म हो, वह यहाँका स्नेह पाकर मुसकरा उठे।

सास-बहूका झगड़ा नादानीपर टिका है, समझदार लोगोंके यहाँ ये झगड़े नहीं होते। बहू अपनी सासको अपनी जन्म देनेवाली माँ समझकर उसका सम्मान करे, सेवा करे और सास अपनी बहूको अपनी पुत्री समझकर प्यार-दुलार करे तो क्यों होगा विवाद? पति-पत्नी परस्पर एक-दूसरेके विचारोंको धैर्यपूर्वक सुनें, समझें, विचार करें। जितनी मात्रामें वैचारिक भिन्नता है, उसे छोड़कर जिन बातोंमें सहमति बनती है, उनपर आगे बढ़ें। विचारोंका भिन्न होना स्वाभाविक है। इस विविधताभरी सृष्टिमें मनुष्यके सिवाय कोई अन्य जीव स्वभावको बदल नहीं सकता, समझौता कर नहीं सकता। मनुष्य ही वह जागरूक प्राणी है, जो स्वयंको बदल सकता है। परस्पर एक-दूसरेकी बातको आदर देनेकी प्रवृत्ति विकसित होगी तो जीवन खुशहाल होगा। जिद्दी स्वभाव, कुतर्क, व्यंग्य कसना, तंज कसना, छोटी-छोटी बातोंका बतंगड़ बना देना, एक-दूसरेके नाम, रूप, परिवार, माता-पिता, भाई-बहन, आर्थिक स्थिति, गाँव-घर, सुविधा-असुविधाको लेकर कटाक्ष करनेसे कलह बढ़ेगा। जीवनका रस भंग होगा। मनमें गाँठ पड़ जायगी। अतः दोनों ही अतीतको भुलाकर वर्तमानका सदुपयोग करें। एक-दूसरेके पूरक बनकर, सुख-दुःखका एक साथ सामना करें। भविष्यके भव्य जीवनभवनकी मिलकर नींव रखें। परस्पर एक-दूसरेकी कोई भी कमी हो तो उसकी पूर्ति अपने गुणोंसे करें तथा

कोई अच्छाई हो, कला-कुशलता, विशेषता हो तो उसको प्रोत्साहन दें, प्रशंसा भी करें। जीवन-विकासमें उसका सदुपयोग भी करें। जीवनमें हर पलका संयमित आनन्द लें। जीवनको कलात्मक ढंगसे जीयें। जो दूसरोंके लिये भी आदर्श बन जाये।

जब किसी एकको नासमझीवश आवेश (क्रोध) आ जाये तब दूसरा शान्त रहे, ठण्डा होनेकी प्रतीक्षा करे, क्योंकि आगको कभी भी आगसे बुझाया नहीं जा सकता, उसी प्रकार क्रोधको क्रोधसे नहीं, शान्तिसे दबाओ, घृणाकी दवा घृणा नहीं, प्रेम है। निन्दाकी दवा निन्दा नहीं, उसकी दवा या तो प्रशंसा है या मौन अथवा प्रतीक्षा है। 'सत्य-प्रेम-करुणा' ये ऐसा अचूक रामबाण है कि इसके आगे सारे दुर्गुण, दुर्व्यवहार, क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्ष्या सब शान्त हो जाते हैं। 'सेवा सुमिरन मौन'—ये ऐसा मन्त्र है कि जिसके जीवनमें उतर गया, उसका जीवन सन्त या वसन्त हो गया। बहुत छोटा जीवन है, इसमें कलहकी जगह कहाँ है, इसे प्रेम, सेवा, पूजा, समाजसेवा, स्वाध्यायमें व्यतीत करना चाहिये। यही जीवनका सार है। आध्यात्मिकताके बिना ये भौतिक उन्नति फूले हुए गुब्बारेकी तरह खोखली है। समर्पण और साधनामें या तो किसीको अपना बना लो या फिर आप ही किसीके हो जाओ या तो किसीको समझा दो अथवा स्वयं ही समझ जाओ। आप जानते ही हैं, गरम लोहेको ठंडा लोहा काटता है, मतलब समझे? क्रोधी व्यक्तिको शान्त व्यक्ति झुका देता है। कैसे? जो अशान्त है, गुस्सेमें है, तेज बोल रहा है, आँखें अंगारे-सी दहक रही हैं, हाथ-पैर पटक रहा है, होठ फड़फड़ा रहा है, जब थोड़ी देरमें गरमी चली जायगी, शान्त हो जायगा, पछतायेगा, क्षमा माँगेगा, परंतु जो पहलेसे ही शान्त है, उसका क्या बिगड़ेगा? अतः कभी भी क्रोध नहीं करना चाहिये। ध्यानसे देखना, कितना भी सुन्दर व्यक्ति हो क्रोध उसकी सुन्दरताको (जबतक क्रोध रहता है) नष्ट करके कुरूप, क्रूर, कलुषित-सा बना देता है। जबकि सामान्यतया कितना भी कुरूप व्यक्ति हो, वह भी जब मुसकराता है तो सुन्दरताकी, आकर्षणकी, स्नेहकी छबि उसके मुखसे झलक उठती है। छोटी-छोटी बातोंपर स्वयंको तमाशा न बनायें। बच्चोंकी नजरोंमें, घरके लोगोंकी नजरोंमें, पड़ोसियोंकी नजरोंमें, जहाँतक कलहकी बदबू जाती है, उन सबकी नजरोंमें आपकी इज्जत कम हो जाती है। अतः जीवनमें जो अप्राप्त है, उसकी ओर न देखो, बल्कि जो प्राप्त है, उससे प्रसन्नताका अनुभव करो। मेरा मतलब आपको निष्क्रिय या अकर्मण्य बनाना नहीं है कि आप जीवनमें कोई लक्ष्य ही न बनायें। मेरा कहना है कि क्रियाहीन कल्पना, प्रयासहीन सपने, सामर्थ्यसे अधिक बड़े मनोरथ व्यक्तिकी जिन्दगीको विनाशकी आगमें झोंक देते हैं। परीक्षा देकर उत्तीर्ण होनेकी चाहत उचित है। बिना फार्म भरे, बिना पढ़े, बिना परीक्षा दिये सोचता रहे, एम०ए० कर लेता, करना है, करूँगा, ये ठीक नहीं है। अच्छे सपने देखो, परंतु उनको साकार करनेके उद्योगके साथ। निरुद्यमी होकर जीना, निरुद्देश्य जीना, निराधार बातें करना ठीक नहीं।

गृहस्थाश्रम धन्य है!

सानन्दं सदनं सुताश्च सुधियः कान्ता मनोहारिणी
सन्मित्रं सुधनं स्वयोषिति रतिः सेवारताः सेवकाः।
आतिथ्यं सुरपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे
साधोः सङ्ग उपासना च सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः॥

वह गृहस्थाश्रम धन्य है, जिसमें आनन्दमय घर, विद्वान् पुत्र, सुन्दरी स्त्री, सच्चे मित्र, सात्त्विक धन, स्वपत्नीमें प्रीति, सेवापरायण सेवक, अतिथि-सत्कार, नित्य देवपूजा, मधुर भोजन, सत्संगति और उपासना—ये सर्वदा प्राप्त होते रहते हैं

संत-चरित—

आत्मज्ञानी महात्मा महर्षि रमण

(श्रीरामलालजी श्रीवास्तव)

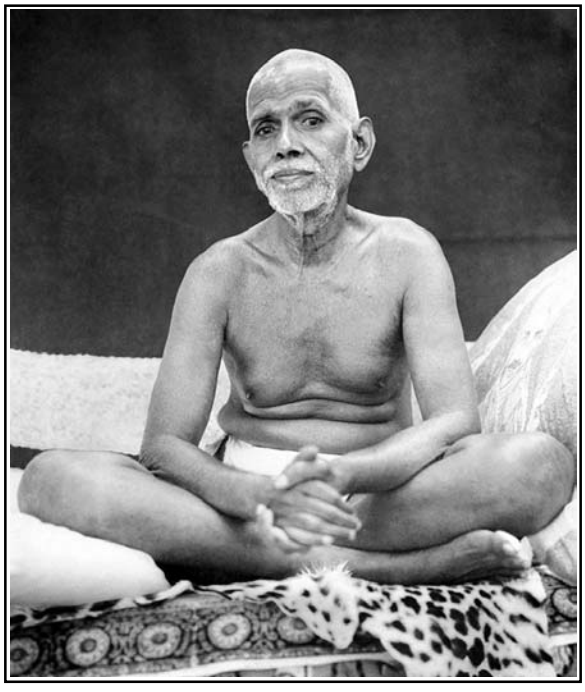

महर्षि रमण औपनिषद आत्मयोगी थे, आत्मज्ञ थे। वे अरुणाचलके सजीव दिव्य रूप थे। वे समस्त जगत्के थे और समस्त जगत्की आत्मचेतना—परम सत्ताकी अभिव्यक्ति थे। परम सत्ता उनकी आत्मामें व्याप्त थी। उन्होंने माया-मोहके अन्धकारसे आतंकित और जड़-विज्ञानसे उत्पीड़ित प्राणीको आत्मदान दिया। वे श्रद्धा और भक्तिके अरुणाचल थे, दिव्य सिन्दूर थे। महर्षि रमणने आजीवन अखण्ड-असंग आत्मरमणका रसास्वादन किया। सुन्दरानन्द स्वामीके शब्दोंमें 'महर्षि रमण जीवन्मुक्त मुनिवर और आत्मनिष्ठाधुरीण थे।' दक्षिण भारतके एकान्त अरुणाचलम् क्षेत्रमें असंख्य लोगोंने उनके चरणपर नतमस्तक होकर अमित निष्ठा प्रकट की। वे परम सिद्ध और भुक्ति-मुक्तिप्रदाता थे। वे आत्मशान्तिकी मौन भाषा थे। उन्होंने अपने तपोमय जीवनसे सिद्ध किया कि मौनमें जो सक्रियता और शक्ति है, वह भाषण अथवा प्रवचनमें कदापि नहीं है। उनका आत्मदर्शन सर्वदर्शन है।

महर्षि रमणने आत्माकी स्थिति स्वीकार की। उन्होंने कहा कि शरीर और आत्माके मध्यमें 'अहम्' एक गाँठ है। वे कहते थे—'इस बातका विचार मत करो कि तुम मरनेके बाद क्या होगे; समझना तो यह है कि तुम इस समय क्या हो।' परमात्मा और आत्मा एक ही वस्तु-तत्त्वके दो नाम हैं—रमण महर्षिने इस तथ्यकी परिपुष्टि की। उन्होंने आत्मसाधनाकी व्याख्यामें कहा कि 'आत्मदर्शन और जीवन दोनों पर्याय हैं।' वे रहस्यमयी आत्मचेतनामें सदा विभोर रहते थे। शाश्वत चिन्मय आत्मशान्ति ही उनकी परमात्मानुभूति—परम सत्ताकी प्राप्तिकी मूलभूमि स्वीकार की जाती है। वे लोकगुरु, सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मज्योतिसम्पन्न आत्मज्ञानी महात्मा थे।

दक्षिण भारतके तमिलनाडुके मदुरा जनपदके तिरुचुषि ग्राममें एक साधारण, अत्यन्त धर्मनिष्ठ ब्रह्मण परिवारमें (संवत् १९३६ वि०) सन् १८७९ ई०, ३० दिसम्बरको एक बजे रातमें महर्षि रमणका प्राकट्य हुआ था। उनके पवित्र जन्मसे धरतीपर आत्माका पूर्ण प्रकाश उतर आया। उनके पिता सुन्दर अय्यरने वेंकटरमणको मदुरामें लाकर पालन-पोषण किया। वे मदुरामें वकालत करते थे। वेंकटरमण (महर्षि रमण)-के बड़े भाईका नाम नागस्वामी था। उनकी माता अषगम्माल बड़ी सती-साध्वी थीं। वेंकटरमण अपनी माताके साथ मन्दिरमें देव-दर्शन करने जाया करते थे। बाल्यावस्थामें उनकी शिक्षाका प्रबन्ध तिरुचुषिकी पाठशालामें हुआ था। उसके बाद दिंडुक्कलमें उन्होंने पाँचवीं कक्षातक अध्ययन किया। मदुराके स्वाट्स् माध्यमिक विद्यालय तथा एक अमेरिकी मिशनके विद्यालयमें उनकी उच्च शिक्षाकी व्यवस्था की गयी। पढ़ने-लिखनेमें उनका मन कम लगता था। वे शिक्षाके प्रति प्राय: उदासीन रहा करते थे। वेंकटरमण अनवरत किसी गम्भीर चिन्तनमें लीन रहते थे। वे देखनेमें बड़े सुन्दर, सौम्य तथा सुशील थे। लोग उन्हें देखकर मुग्ध हो जाया करते थे। वेंकटरमणने बचपनमें तिरसठ तमिल शैव संतों (नायनारों)-का जीवन-चरित्र पढ़ा। वे उससे बहुत प्रभावित हुए। देव-मन्दिरमें दर्शन करते समय भगवान्से वर माँगा करते थे कि 'प्रभु! मेरा जीवन भी इन्हीं संतोंके जीवनकी तरह

बना दीजिये।' उनमें बचपनमें ही वैराग्यकी प्रवृत्ति बढ़ने लगी। संसारके नश्वर रूप—प्राणियों और पदार्थोंमें उनकी तनिक भी रुचि नहीं रह गयी। वे उनके प्रति अनासक्त हो उठे। उन्होंने आत्मोदयकी स्वर्णिम किरणोंकी झाँकी देखी। 'पेरियपुराणम्' के पाठसे उनका जीवन ही बदल गया; तमिल-संतोंकी चरित्रमाला उन्होंने अपने गलेमें डाली। जब वे पन्द्रह सालके थे, एक दिन उनके घरपर एक अतिथिका आगमन हुआ। 'आपका आगमन कहाँसे हुआ?'—ऐसी जिज्ञासासे वेंकटरमणने उनके प्रति सम्मान प्रकट किया। 'अरुणाचलसे'—अतिथिके मुखसे ये शब्द निकले ही थे कि वेंकटरमण किसी पूर्वजन्मके संस्कारके फलस्वरूप एक दिव्य भावना अथवा चेतनासे सम्पन्न हो उठे। उनका रोम-रोम विलक्षण आनन्दसे सिहर उठा, श्वास वेगसे चलने लगा। लोग उनकी दशा देखकर आश्चर्यचकित हो गये। अरुणाचलेश्वर शिवसे उनका अविच्छिन्न शाश्वत आत्मसम्बन्ध था, इस बातकी सत्यता इस घटनासे प्रमाणित हो जाती है।

उन्होंने सत्रह सालकी अवस्थामें मृत्युके स्वरूपपर विचार किया और अमरता—आत्माकी सनातन सत्ताकी अनुभूति प्राप्त की। एक दिन वे अपने चाचाके घरकी ऊपरी छतपर थे। वे पूर्ण स्वस्थ थे। अचानक उन्हें ऐसा लगा कि मृत्यु आ रही है। वे आतंकित हो उठे। वे गम्भीरतापूर्वक सोचने लगे कि मृत्यु शरीरकी होती है या इसमें रहनेवाले 'अहम्' की। उन्होंने इस विषयमें प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहा। वे छतपर लेट गये। उन्होंने आरामसे हाथ-पैर फैला दिये; अंग-प्रत्यंग शिथिल कर दिये। वे सोचने लगे कि 'लोग थोड़ी देरके बाद मेरे मृत-शरीरको श्मशान ले जायँगे। उसे जलाकर राख कर देंगे तो क्या शरीरके जल जानेपर इसमें निवास करनेवाला 'मैं' भी जल जायगा।' अन्तरात्माने उत्तर दिया, 'नहीं, नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। मृत्यु शरीरको मार सकती है; आत्मा अविनश्वर है, अमर है और मृत्युकी सीमासे बाहर है।' वे सावधान हो गये। मन-ही-मन सोचने लगे, 'शरीर मर रहा है, मृत्यु आ रही है। वह मुझे दीख पड़ रहा है। इसे देखनेवाला 'मैं' निस्संन्देह अमर है।' अज्ञान-अन्धकारका नाश हो गया, अविद्याका अन्त हो गया। वेंकटरमणने आत्मपरिचय प्राप्त किया। वे उठ बैठे। उन्होंने मृत्युपर विजय पायी, उन्हें शरीरमें जकड़ी आत्माका मुक्ति-विधान मिल गया। इस असाधारण घटनासे वे सचेत हो गये। संसारके प्रति उदासीनता बढ़ने लगी। लोगोंने उनमें परिवर्तन देखा। पढ़ने-लिखनेमें उनकी तनिक भी रुचि नहीं रह गयी। वे अपनी खोज—आत्मान्वेषणके लिये विकल हो उठे। वे नियमपूर्वक मन्दिरमें जाकर शिव नटराज और मीनाक्षीसे कृपा-याचना करने लगे; आत्माकी खोजके लिये सहायता माँगने लगे। उनका अन्तःकरण आत्मज्योतिसे प्रकाशित हो उठा; वे आत्माके उपासक बन गये।

गृहत्यागका समय आ गया। वेंकटरमणकी अवस्था केवल सत्रह सालकी थी। एक दिन उन्हें अरुणाचलका स्मरण हो आया। उन्होंने अपने बड़े भाई नागस्वामीसे कहा कि 'आज विद्यालयमें विशेष कक्षाका आयोजन है, मुझे जाना है।' नागस्वामीने कहा कि 'पेटीमें पाँच रुपये हैं, उन्हें लेते जाओ। मेरी फीस जमा कर दो।' वेंकटरमणने सोचा कि साक्षात् अरुणाचलेश्वर ही मेरे मार्ग-व्ययकी व्यवस्था कर रहे हैं, उन्होंने आवश्यकताके अनुसार तीन रुपये ले लिये और घर तथा सांसारिक जीवनसे अन्तिम विदा ली। जाते समय उन्होंने पत्र लिख दिया, 'मैं परमपिताकी खोजमें उन्हींकी आज्ञासे निकल चुका हूँ। यह शरीर सत्कार्यमें ही प्रवेश कर रहा है। इस सम्बन्धमें कोई व्यर्थकी माथा-पच्ची न करे; न दुःख माने।' पत्रपर उन्होंने नाम नहीं लिखा; नामके प्रति उनका वैराग्य हो गया। वे आत्मानुसंधानके लिये अनाम होकर निकल पड़े। वे घरसे सीधे रेलवे स्टेशन गये। गाड़ी विलम्बसे आयी। तिरुवण्णामलै पहुँचनेके लिये निकटतम स्टेशन तिण्डिवनम् था। सबेरा होते-होते गाड़ी विष्णुपुरम् पहुँची। अरुणाचलका पता लगानेके लिये वे नगरमें गये। केवल दस पैसे पासमें थे। टिकट लेकर अगले स्टेशनतक ही जा सके। उन्होंने शेषमार्ग पैदल चलकर पूरा किया। सूर्य अस्ताचलकी ओर जा रहे थे। वे अरयणिनल्लूर पहुँचे। मन्दिरमें देव-दर्शनके लिये गये। उन्हें अद्‌भुत प्रकाश दीख पड़ा। उसे मूर्ति समझकर वे मन्दिरके गर्भगृहमें गये। इस प्रकार उन्होंने भागवती कृपा-ज्योतिका दर्शन किया। मनमें विश्वास हो

गया कि भगवान् अरुणाचलेश्वर पद-पदपर उनकी सहायता कर रहे हैं। मन्दिरका पट बन्द होनेवाला था। वे मन्दिरके बाहर आते ही ध्यानस्थ हो गये। उन्होंने पुजारीसे भोजन माँगा। पुजारीने भोजन देना अस्वीकार कर दिया। वे मन्दिरसे लोगोंके साथ किषूर गाँव आये। अन्न-जलके अभावमें भूख उन्हें जोरोंसे सता रही थी। एक परिवारकी भागवत—भगवद्भक्त दम्पतीने दूसरे दिन उन्हें मिष्टान्न खिलाया। उन्होंने चार रुपयोंमें अपने कानकी सोनेकी बाली गिरवी रखी। इस प्रकार वे १९५३ विक्रमीय भाद्र कृष्णा नवमीको प्रभातकालमें तिरुवण्णामलै पहुँच गये। रेलसे उतरते ही वे सीधे भगवान् अरुणाचलेश्वरके मन्दिरमें अपनी उपस्थिति निवेदन करने गये। उन्होंने परम ज्योतिके सम्मुख श्रद्धा और भक्तिसे नतमस्तक होकर कहा कि 'प्रभु! मेरी लाज आपके हाथमें है, मैं आपके पदपद्ममें पूर्णरूपसे आत्मार्पण करता हूँ। परम देव! मुझे आत्मज्ञान दीजिये।' वे भगवान् अरुणाचलेश्वरका दर्शनकर मन्दिरके बाहर आये। अयंकुलम् तालाबपर जाकर उन्होंने शेष सामान तथा पैसे आदि फेंक दिये, कपड़े उतारकर कौपीन धारण कर लिया। वे पूरे अवधूत बन गये। वृष्टि हुई, ऐसा लगता था मानो प्रभुने उनके स्नानके लिये जलके रूपमें अपनी कृपा बरसायी। वे हजार खम्भेवाले मण्डपमें जाकर जप करने लगे। बालयोगीने मौन व्रत लिया। बाहर एकान्तकी सुविधा न पाकर कुछ दिनोंके बाद भूगर्भगृह पाताललिंग स्थानमें प्रवेशकर जप-तप करने लगे। लोग आश्चर्यचकित हो गये; यह स्थान अँधेरा था; उसमें प्रकाश नाममात्रको भी नहीं था; उस भूगर्भगृहमें कीड़े-मकोड़े अधिक थे। वे आत्मध्यानमें इस प्रकार तल्लीन हो गये कि शरीरकी सुधि ही न रही। वे लोगोंमें ब्राह्मण स्वामीके नामसे प्रसिद्ध हो गये। दूर-दूरसे उनके दर्शन करनेवालोंकी भीड़ आने लगी। अनुकूलताकी दृष्टिसे जगह बदलते रहनेपर भी साधु-संत उनका पता लगाकर मिलते रहते थे। वे कुछ दिनोंतक कार्तिकेय-मन्दिरमें रहे; तत्पश्चात् उसीसे सटी एक फुलवारीमें तप किया। वे मंगेपिल्लैयार मन्दिरमें भी रहे। उद्दण्डिनायनार नामक एक साधुने उनकी बड़ी सेवा की। अड़ोस-पड़ोसके जनपदोंमे नये बालसंन्यासीकी प्रसिद्धि बढ़ने लगी। वे नितान्त मौन और आत्मस्थ थे। एक दिन मदुराके एक मठमें तिरुवण्णामलैके तंबिरानजीने बालयोगी रमणके पूर्वाश्रमकी महिमापर भाषण दिया। उस भाषणमें रमणके परिवारका एक बालक उपस्थित था। भाषण सुननेके बाद यह बात उसके मनमें बैठ गयी कि बालयोगी हमारे वेंकटरमण ही हैं। लड़केने घर आकर यह भेद प्रकट किया। रमणके चाचा नैल्लियेप्पैय्यर अरुणाचल गये। उस समय रमण महर्षि एक अमराईमें थे। उनसे मिलना आसान नहीं था। किसी प्रकार उन्होंने मिलनेकी आज्ञा प्राप्त की। उन्होंने देखा कि रमणका शरीर धूलिधूसरित है, जटा बढ़ी हुई है, नाखून बढ़कर टेढ़े हो गये हैं। उन्होंने मन-ही-मन अपने सौभाग्यकी सराहना की कि हमारे कुलके एक बालकने इस प्रकार आध्यात्मिक प्रसिद्धि प्राप्त की है। उन्होंने उनसे घर चलनेका आग्रह किया, पर बालयोगी मौन रहे। मौन ही उनका उत्तर था। उनके चाचा घर लौट आये।

माता अषगम्माल अपने बड़े पुत्र नागस्वामीको लेकर रमणको देखने आयीं। उन्होंने अपने प्राणप्यारे पुत्रको देखा। वे एक पाषाणखण्डपर लेटे हुए थे, शरीर काला पड़ गया था और नेत्रोंमें दिव्य ज्योति थी। माताकी ममता जाग उठी। उन्होंने घर चलनेका आग्रह किया। संन्यासी पुत्रने मौनका वरण किया। स्वामी रमणने विशेष आग्रह करनेपर लिखा, 'विधाता प्राणियोंके भाग्यका उनके प्रारब्धके अनुसार निपटारा करते हैं। जो नहीं होना है, वह नहीं होगा। सबसे उत्तम मार्ग मौन है।' माता चली गयीं। वे कभी-कभी उन्हें देखने आया करती थीं। कुछ दिनोंके बाद वे आश्रममें ही निवासकर उन्हें वात्सल्यका रसास्वादन कराती रहीं। रमण मौन ही रहते थे।

अरुणाचल आनेके बाद महर्षि रमण फिर कहीं नहीं गये। उन्होंने उस पवित्र दिव्य स्थानमें चौवन सालतक निवास किया। विश्वके कोने-कोनेसे लोग आकर उनकी चरण-धूलिसे अपने-आपको कृतार्थ मानने लगे। महर्षि रमणने अरुणाचलकी महिमाका वर्णन किया है कि 'इस पर्वतका ऐसा प्रभाव है कि इसका स्मरण करनेसे ही प्रत्येक व्यक्तिको किसी दशा या स्थानसे ही तत्काल मुक्ति प्राप्त हो जाती है। इस पर्वतरूपी लिंगमें समस्त जगत् व्याप्त है। यह भगवती पार्वतीकी तपोभूमि है। सत्ययुगमें यह अग्नि-

स्तम्भके रूपमें था, त्रेतामें लाल मणिके समान था और द्वापरमें सुवर्ण था तथा कलिमें पाषाण है।' अरुणाचलकी महिमासे महर्षि रमण गौरवान्वित हुए तथा उनकी उपस्थितिसे वातावरणमें दिव्य शान्ति परिव्याप्त हो उठी। उन्होंने विरूपाक्षगुफा और आम्रगुहामें भी तपस्या की। विरूपाक्ष गुफामें निवास करते समय महर्षि रमणने 'अक्षररमणमालै' की रचना की। उनके शिष्य और भक्त 'अक्षररमणमालै' गीत गा-गाकर गाँवोंमें भिक्षा माँगा करते थे।

रमण महर्षिका आश्रम-जीवन परम तपोमय था। आश्रमके बन्दर, गिलहरी तथा अन्य पशु-पक्षी उनके अनन्य साथी थे, दो सफेद मोर और एक काला कुत्ता करुप्पन तथा गाय लक्ष्मी आदि उनके प्रेमभाजन थे।

संस्कृतके उद्भट विद्वान् काव्यकण्ठ गणपति शास्त्री उनसे मिलने आये। वे तपोरूप संन्यासीको देखकर विनत हो गये। उन्होंने निवेदन किया कि 'देव! मैंने वेदान्तशास्त्रका अध्ययन किया, बड़े-बड़े ग्रन्थ देखे, मुझे पता न लगा तपके रूपका। मुझे तपका रूप समझाइये।' रमण महर्षि घर छोड़नेके बादसे मौन थे। मौनव्रतका पालन करते ग्यारह साल हो गये थे। संवत् १९६४ वि०में गणपति शास्त्री उनसे मिलने आये थे। महर्षिने पन्द्रह मिनटतक उनकी ओर एकटक देखा; उन्हें सच्छिष्यकी श्रद्धा मिल गयी। शिष्यने गुरुकी कृपाज्योति प्राप्त कर ली। महर्षिने मौनव्रत भंग किया ठीक ग्यारह सालके बाद। उन्होंने कहा, 'निरन्तर आत्मानुसंधानमें मनका तत्पर रहना ही तप है। इसी प्रकार मन्त्रका जप करते समय मन्त्रनादके अनुसंधानमें मनका लगा रहना तप है।' काव्यकंठ गणपति शास्त्रीका पूरा-पूरा समाधान हो गया। वे सद्गुरुके चरणोंपर विनत हो गये। गणपति शास्त्रीने उनके पूर्वाश्रमके नामका पता लगनेपर महर्षिके शिष्यों और अनुयायियोंसे कहा कि महर्षिके लिये हमलोग 'भगवान् रमणमहर्षि' विशेषणका उपयोग करेंगे। अरुणाचलके प्रसिद्ध आत्मयोगी इस तरह महर्षि रमणके नामसे प्रसिद्ध हुए।

महर्षि रमणको सिद्धियों और चमत्कारोंसे बड़ी घृणा थी। वे कहा करते थे कि 'चराचरमें एक ही चेतन सत्ताका अधिवास है, फिर सिद्धि किसके प्रति दिखायी जाय।' उनकी साधनाका स्वरूप आत्मान्वेषण था। केवल आत्माकी खोजके लिये ही उन्होंने जगत्से विरक्त होकर तप किया। वे कहा करते थे कि 'सर्वोत्तम और परम शक्तिमयी भाषा मौन है। मौन शान्तिका भूषण है। उपदेश तो नितान्त मौन रहकर ही दिया जा सकता है।' अरुणाचल उनके तपोमय जीवनका दिव्य तथा परम ज्योतिर्मय प्रतीक है। रमणाश्रममें देश-विदेशके अध्यात्म-पथके जिज्ञासु आ-आकर अपनी जिज्ञासा और पिपासाकी तृप्ति करने लगे। महर्षिकी दृष्टि पड़ते ही, मौन भाषाका प्रवाह उमड़ते ही उनकी सारी शंकाओं और प्रश्नोंका समाधान हो जाया करता था। रमणाश्रमसे आध्यात्मिक लाभ उठानेवालोंमें काव्यकंठ गणपति शास्त्री, कपालिशास्त्री, शुद्धानन्द भारती, शेषाद्रिस्वामी, योगी रंगनाथन्, हम्फ्रीस, पाल ब्रन्टन आदिके नाम विशेषरूपसे उल्लेखनीय हैं। उन लोगोंने अपनी श्रद्धा महर्षिके चरणोंमें समर्पितकर अनन्य भक्ति और आदरका परिचय दिया। महर्षिके दर्शनके लिये दूर-दूरसे आनेवाले यात्रियोंकी भीड़ लगी रहती थी। मौन रमण महर्षिकी साधनाका प्राण था तो शान्ति उनकी आत्मोपासनाकी सखी थी, शक्ति थी। वे वास्तविक आत्मज्ञ थे।

महर्षि मौनसे ही प्रश्नोंका उत्तर दे दिया करते थे। यदि बोलना पड़ता था तो विचित्र ढंगसे समाधान किया करते थे। एक समय एक व्यक्तिने जिज्ञासा प्रकट की कि सभी मनुष्योंमें समता स्थापित होनी चाहिये। महर्षि रमणने तत्काल कहा कि सबको सो जाना चाहिये, निद्रामें समता है। एक समय महर्षिने कहा कि 'विवेकानन्दजीने परमहंस रामकृष्णसे प्रश्न किया था कि क्या आपने परमात्माको देखा है? मैं प्रश्न करता हूँ कि परमात्माको किसने नहीं देखा है?'

एक बार महात्मा गांधीके दाहिने हाथ बाबू राजेन्द्रप्रसाद रमणाश्रम गये। उन्होंने महर्षि रमणका दर्शन करनेके बाद कहा कि 'महात्माजीने मुझे आपके पास भेजा है, क्या आप उनके लिये सन्देश देंगे?' महर्षिने गम्भीर शान्तिसे कहा कि 'सन्देशकी क्या बात है, हृदय तो हृदयकी बात कहता ही है; जो शक्ति यहाँ कार्य कर रही है, वही वहाँ भी कार्यशील है।'

एक बार एक व्यक्तिद्वारा उनके प्रति साधारण-सा अपराध हो गया। वह व्यक्ति बड़ा दुखी हुआ। एक

मित्रके परामर्शसे वह महर्षिके पास आया। पश्चात्ताप तथा क्षमायाचना करते हुए उसने आदरपूर्वक महर्षि रमणकी तीन बार प्रदक्षिणा की, निवेदन किया कि 'मनसे आप मेरे अपचारकी बात निकाल दीजिये। मुझसे बड़ी भूल हो गयी, क्षमा कर दीजिये।' महर्षिने कृपाभरी दृष्टिसे उसकी ओर देखकर कहा कि 'मेरे पास तो मन है ही नहीं, फिर अपचारकी बात ठहर ही कैसे सकती है? व्यक्तिने उनकी चरण-धूलि मस्तकपर चढ़ा ली और वन्दना की।

महर्षि शरीर-भावसे सर्वथा शून्य थे। एक समय जब वे स्कन्दाश्रममें रहते थे, योगी रंगनाथन्‌के साथ टहलते हुए पहाड़ीकी ओर निकल गये। वनमें प्रवेश करते ही पैरके तलवेमें काँटे चुभने लगे तथा पत्थरके टुकड़े गड़ने लगे। वे तेजीसे आगे बढ़ रहे थे, पैरोंमें चोट लगती थी, रक्त बह रहा था, योगी रंगनाथन् पीछे रह जाते थे। रंगनाथन्‌से यह दृश्य देखा न गया, उन्होंने महर्षिको रोका, पैरसे काँटे निकाले। महर्षिने कहा कि काँटे तो रास्तेमें चुभेंगे ही, तुम कबतक निकालते रहोगे? उनके कहनेसे योगी रंगनाथन् मौन हो गये। महर्षि द्रुत गतिसे आगे बढ़ गये। उन्होंने आत्मचिन्तनके समक्ष शरीरकी चिन्ताको तनिक भी महत्त्व नहीं दिया। वे तो परम विरक्त थे।

एक बार स्कन्दाश्रममें योगी रंगनाथन् महर्षिके दर्शन करने गये थे। दस दिन पहले एक विचित्र घटना घटी थी। महर्षिके सामने ही माता अषगम्मालने कहा कि 'मैंने देखा था कि रमणका शरीर एक लिंगके रूपमें परिणत हो रहा था, तिरुचुषि मन्दिरके शिवलिंगके ही समान मुझे रमणका शरीर दीख पड़ा। दस बजे दिनका समय था, पहले तो मैंने विश्वास ही नहीं किया, पर फिर देखनेपर वही स्थिति बनी रही। मैं भयभीत हो उठी कि रमण हमलोगोंका साथ छोड़ रहे हैं; पर धीरे-धीरे लिंगके स्थानपर उनका शरीर प्रकट हो गया। मेरे जीमें-जी आया।' योगी रंगनाथन् महर्षिकी ओर देखने लगे। महर्षि मुसकुरा दिये। ऐसा करके उन्होंने माताके कथनका अनुमोदन किया। यह उनकी दिव्य साधनाकी एक असाधारण घटना है।

संवत् १९६५ वि०की बात है। काव्यकंठ गणपति शास्त्री मद्रासके पास तिरुवोत्तियूरके गणेश-मन्दिरमें तप कर रहे थे। उनके मनमें एक प्रश्न उठा, वे सोचने लगे कि यदि महर्षि पास होते तो कितना अच्छा होता। इतनेमें महर्षि दीख पड़े। गणपति शास्त्रीने साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। महर्षिने उनके सिरपर हाथ रखा, वे उनके स्पर्शसे धन्य हो गये। महर्षिने इक्कीस सालके बाद इसी प्रकारकी एक घटनाका वर्णन करते हुए कहा था कि 'कुछ समय पहले मैं लेटा हुआ था; समाधिकी दशा नहीं थी; ऐसा लगा कि शरीर ऊपरकी ओर उठाया जा रहा है। दृश्य-जगत् लुप्त हो गया; मेरे चारों ओर सघन उज्ज्वल ज्योति दीख पड़ी। थोड़ी देरके बाद दृश्य-जगत् फिर भासित हो उठा। मुझे उस समय ऐसा लगा कि मैं तिरुवोत्तियूरके गणेश-मन्दिरमें हूँ। मैंने कुछ भाषण किया था, जिसका मुझे स्मरण नहीं है। उसके बाद अरुणाचलपर विरूपाक्ष गुफामें आ गया।' इस घटनाका साम्य गणपति शास्त्रीद्वारा वर्णित घटनासे है। यह घटना महर्षि रमणकी परमोच्च सिद्ध अवस्थाका परिचय कराती है। आत्मसाधनाके क्षेत्रमें इस तरहकी घटना चमत्कार नहीं, दिव्य आत्मसिद्धिकी द्योतक है।

वे करुणासागर थे। समस्त प्राणियोंके प्रति उनके हृदयमें सहज दया थी। एक समय एक घायल कौवा उड़ता हुआ आश्रममें गिर पड़ा। महर्षिने उसको अपने कोमल कर-स्पर्शसे सहलाया, काफी चोट थी। उन्होंने पट्टी बाँधी तथा आश्रममें ही एक सुरक्षित स्थानपर उसे रखवा दिया। तीन दिनोंके बाद उसे देखने गये; हाथमें उसे लिया ही था कि उसके प्राण निकल गये; उसका मृत शरीर महर्षिके हाथमें रह गया। कितना सौभाग्यशाली था वह! उसे महर्षिके हाथसे अनायास सद्‌गति मिली। उसके जन्म-जन्मान्तरके पुण्य प्रकट हो गये, असहाय पक्षी धन्य हो गया। महर्षिने उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया सम्पन्न की और उसकी समाधि बनवायी। समाधिपर कौवेकी आकृतिका एक पत्थर लगाया गया, जो महर्षिकी करुणाका अमर प्रतीक है। रमणाश्रममें ऐसी समाधिके दर्शनसे असंख्य प्राणी चिरकालतक मुग्ध होते रहेंगे।

महर्षि रमणका सिद्धान्त आत्मानुसंधान था। उन्होंने आत्मानुभूति प्राप्त की। उन्होंने कहा कि 'अपने-आपको

जानो, आत्मज्ञान ही परमोच्च ज्ञान है, सत्यका ज्ञान है।' उन्होंने वचन नहीं, अपने जीवनसे आत्मोपदेश दिया, आध्यात्मिक शिक्षा दी। उनकी भाषाका अलंकार मौन था; उनकी साधनाका प्राण आत्मज्ञान था। उन्होंने आत्मज्ञानके कृपाणसे मोहमाया तथा अविद्यारूपी शत्रुका अन्त कर दिया। उन्होंने आत्माकी खोजमें प्रवृत्त असंख्य लोगोंका सही-सही दिशामें पथ-प्रदर्शन किया। यह पूछनेपर कि 'मरकर क्या होंगे,' उन्होंने कहा कि 'तुम क्या जानना चाहते हो कि तुम मरकर क्या होगे, जब तुम्हें यही नहीं ज्ञात है कि मरनेके पहले तुम क्या हो? रमण महर्षिने आत्मजिज्ञासाका राजपथ—सहज तथा साधननिरपेक्ष विचार-प्रधान मार्ग प्रशस्त किया। आत्मज्ञानकी प्राप्तिके बाद कुछ भी जाननेके लिये नहीं रह जाता, आत्मा सम्पूर्ण है, परमानन्दमय है—ऐसा उनका अनुभव था। वे आत्मार्पित महात्मा थे।'

महर्षिने कहा कि 'आत्मामें संस्थित होनेपर ही आत्मदर्शन—आत्मसाक्षात्कार सहज सुलभ होता है। इस जीवनके पीछे शाश्वत, निराकार, सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा है, उसीकी खोज करनी चाहिये। परमेश्वरको जाननेके पहले अपने-आपको जानना चाहिये। आत्मासे भिन्न परमात्माकी सत्ता—स्थिति ही नहीं है। परमात्मा आत्माभिव्यक्ति हैं। संसार आत्माको न जाननेके कारण ही दुखी है। पारमार्थिक सत्ता ही सत्य है। चेतनता आत्मचैतन्यका ही नाम है।' महर्षि रमणने आत्मसाधनाके ही क्षेत्रमें तन्मयी निष्ठाको महत्त्व दिया कि आत्मस्थिति ही आत्मज्ञान है। उन्होंने आत्मामें स्वस्थ, स्वरूपस्थ होनेकी सीख दी। अच्छा और बुरा—दो मन नहीं है। वासनाके अनुरूप अच्छे और बुरे मनका स्वरूप हमारे सामने आ जाता है। महर्षिने घोषण की कि 'आत्मसिद्धि ही सबसे बड़ी सिद्धि है। दु:खका कारण बाहर नहीं है, यह तो अपने ही भीतर है। दु:खकी उत्पत्ति अहंकारसे होती है।'

विश्वके संत-साहित्यमें महर्षि रमणको अमित गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। उनका जीवन वेदान्त-सिद्धान्तका चिन्मय प्रतीक था। ऐसे तो सब संत-महात्मा पूज्य हैं, पर विक्रमीय उन्नीसवीं और बीसवीं शतीके संतत्रयीमें परमहंस रामकृष्ण, योगिराज अरविन्द और महर्षि रमणके नाम बड़ी श्रद्धासे परिगणित किये जा सकते हैं। महर्षि पूर्ण जीवन्मुक्त थे। वे लोगोंको नेत्र-दीक्षा दिया करते थे। वे जिनकी ओर कृपाभरी दृष्टि डाल देते थे, वे प्राणी कृतार्थ और धन्य हो जाते थे। वे मौन गुरु थे।

महर्षि रमण आत्मलीन होनेके समयतक रमणाश्रममें ही रहे। संवत् १९५७ वि०में उनके बड़े भाई नागस्वामीका शरीर छूट गया। उसके बाद उनके चाचा नैल्लियप्पैय्यरका भी स्वर्गवास हो गया। उनकी माता अषगम्मालका भी देहावसान हो गया। महर्षिने स्कन्दाश्रमसे थोड़ी दूरपर पहाड़ीकी तलहटीमें माताकी समाधि बनवायी। वे छ: माहतक नित्य समाधिका दर्शन करने जाया करते थे। एक दिन महर्षि समाधिके निकट बैठ गये, वहाँसे फिर अन्यत्र कहीं नहीं गये। उसी स्थानपर रमणाश्रमका निर्माण हुआ।

समस्त विश्वमें महर्षि रमणके अनुयायी बहुत बड़ी संख्यामें पाये जाते हैं। उनके सम्पर्कमें विशेषरूपसे आनेवाले काव्यकण्ठ गणपतिशास्त्रीने 'रमणगीता' की रचना की। टी०वी० कपालिशास्त्रीने 'सद्दर्शन-भाष्य' और 'महर्षिके साथ सम्भाषण' पुस्तकें रचीं। कवि-योगी शुद्धानन्द भारतीने 'रमण-विजय' लिखी तथा पाल ब्रन्टनने 'गुप्त भारतकी खोज,' 'रहस्य-पथ' और 'अरुणाचल-सन्देश' नामक पुस्तकोंकी रचना की।

महर्षि रमण आत्म-शान्तिके अगाध समुद्र थे। वे तमिल साहित्यके अच्छे ज्ञाता थे; अंगरेजी, संस्कृत, तेलुगु और मलयालम् आदि भाषाओंकी भी उन्हें जानकारी थी। उन्होंने औपनिषद ब्रह्मका आत्मसाक्षात्कार किया। दक्षिण भारतका कैलास—अरुणाचल उनकी दिव्य उपस्थिति और आत्मज्योतिसे धन्य, कृतार्थ और गौरवान्वित हो उठा।

महर्षि रमण संवत् २००७ वि०में (सन् १९५० ई० के १४ अप्रैलको) आत्मलीन हो गये। उनके महाप्रयाणके अवसरपर उपस्थित भक्तमण्डलीने महर्षिद्वारा रचित 'अरुणाचल-स्तोत्र' का पाठ किया। महर्षि रमण चिन्मय आत्माकी मानवाकृति थे। वे आत्मज्ञानी संत, ब्रह्मयोगी और आत्मसिद्ध महात्मा थे। अरुणाचल उनकी अमरताका भौम स्मारक है।

गो-चिन्तन—

गोवंशकी दुर्दशा—कारण एवं निवारण

(श्रीराजीवजी गुप्ता)

आज गोवंशकी बहुत दुर्दशा हो रही है। किसानोंके खेतोंमें घुसते हुए भूखे-प्यासे गोवंश, कूड़ेके ढेरोंसे कूड़ा एवं पॉलिथीन खाते हुए गोवंश, वाहनोंसे दुर्घटनाग्रस्त होते हुए गोवंशका दिखना आम बात हो गयी है। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान आदि राज्योंमें गोवंशके अवैध वध एवं तस्करीपर प्रभावी नियन्त्रणके साथ उनके रखरखाव और उपयोगकी समानान्तर व्यवस्था न होनेके कारण छुट्टा गोवंशकी समस्या बढ़ती जा रही है तथा यह जन आक्रोशका कारण भी बन रही है।

गोवंशके विकासके लिये सरकारका दृष्टिकोण मुख्यत: दुग्ध-उत्पादनतक ही सीमित रहा है। जैसे-जैसे रासायनिक खादों, कीटनाशकों और ट्रैक्टरोंका उपयोग बढ़ा, वैसे-वैसे गोवंशकी उपयोगिता कम होती गयी। गोचर भूमिपर अवैध कब्जों तथा चारागाहका विकास न किये जानेके कारण किसान कम दूध देनेवाली गाय तथा बैलका पालन-पोषण करनेमें असमर्थ हो गये। जन सहयोगसे बनी गोशालाएँ, गोसदन भी सभी गोवंशको आश्रय नहीं दे पाये तथा गोवंशके अवैध वध एवं तस्करीका धन्धा खूब फला-फूला। यह अन्तरराज्यीय संगठित अपराधके रूपमें संचालित किया जाने लगा, जिसकी कमाईसे आतंकी गतिविधियोंके वित्तपोषणकी भी सम्भावनासे इनकार नहीं किया जा सकता है। वध एवं तस्करीपर रोक लगानेके बाद गोवंशकी दूसरी प्रकारसे दुर्दशा हो रही है, क्योंकि सरकारोंद्वारा उसके रखरखाव एवं चारे-भूसेकी व्यवस्थाहेतु अपेक्षित प्रयास नहीं किये गये। यदि सस्ता भूसा-चारा उपलब्ध हो, जैविक कृषिमें गोबर-गोमूत्रका उपयोग हो, पंचगव्यसे औषधियाँ एवं अन्य जीवनोपयोगी पदार्थ बनाये जायँ तथा बैलोंका बेहतर उपयोग किया जाय तो गोवंश कभी भी आर्थिक दृष्टिसे अलाभकारी नहीं होगा। कई संस्थाएँ तो गोबर-गोमूत्रका समुचित उपयोगकर खूब लाभ कमा रही हैं। इन सभी तथ्योंको दृष्टिगत रखते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालयने वर्ष २००५ ई०के निर्णयमें गुजरात सरकारके पूर्ण गोवध-बन्दीके कानूनका समर्थन किया। सरकारद्वारा गोवंशके नस्ल-सुधार, जैविक कृषि एवं चारा विकासके कार्य सीमित स्तरपर किये जा रहे हैं। बिना सरकारी सहायताके कुछ संस्थाओंद्वारा भी अपने स्तरपर उत्तम प्रयास किये जा रहे हैं। लेकिन कुछ उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत कर देना ही पर्याप्त नहीं है। कड़े फैसले लेते हुए समयबद्ध रूपसे व्यापक स्तरपर प्रभावी कार्रवाई किये जानेकी आवश्यकता है।

गोवंशका मुद्दा दशकोंसे सरकारी अदूरदर्शितासे ग्रसित रहा है। अधिक दूध-उत्पादनके लालचमें हमने जर्सी, होल्सटीन, फ्रिजियन-जैसी विदेशी नस्लोंको बढ़ावा देनेसे पहले यह नहीं सोचा कि तीन-चार ब्यान्तके बाद जब ये गाय दूध देना बन्द कर देंगी तो उनका क्या होगा, उनके नर बछड़ोंका क्या होगा? विदेशोंकी नकल करते समय, जहाँपर उनको दूध कम होनेके बाद तथा नर बछड़ोंको कत्लखाने भेज दिया जाता है, हमें ध्यान रखना चाहिये था कि हमारे देशके अधिकांश राज्योंमें पूर्ण अथवा आंशिक गोवध बन्दी है। ऐसी स्थितिमें अनुपयोगी गोवंश अवैध रूपसे कत्लखाने जायगा या किसानों और गोशालाओंके ऊपर भार बनकर रहेगा। देशी गोवंशको यदि उन्नत किया गया होता, तो उसके पूरे जीवनकालमें १० से लेकर १४ ब्यान्तोंमें दूध भी कहीं अधिक होता तथा उसके उपचार, रखरखावका खर्चा भी कहीं कम होता। उसके दूध, गोबर, गोमूत्रकी गुणवत्ता तो कहीं अधिक होती ही।

सरकारद्वारा नस्ल-सुधारके प्रयास किये जा रहे हैं, लेकिन अभी भी देशी नस्लोंके सीमेनकी उपलब्धता एवं उपयोगकी मात्रा बहुत कम है। एक कड़ा निर्णय लिये जानेकी आवश्यकता है कि आगामी ५ वर्षोंमें गायके कृत्रिम गर्भाधानहेतु शत-प्रतिशत देसी नस्लके सीमेनका उपयोग किया जायगा तथा क्षेत्रमें पर्याप्त उन्नत देशी नस्लोंके साँड़ उपलब्ध कराये जायँगे। साथ ही देसी नस्लोंके वर्गीकृत वीर्यका उपयोगकर यह सुनिश्चित

किया जायगा कि मादा सन्तति अधिक जन्म ले।

दूसरा कड़ा निर्णय यह लेनेकी आवश्यकता है कि आगामी ५ वर्षोंमें अधिकाधिक गो-आधारित जैविक कृषि देशमें कराना सुनिश्चित किया जाय। इसके लिये प्रत्येक वर्ष २० प्रतिशत यूरिया एवं अन्य रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकोंके स्थानपर गोबर और गोमूत्रसे बने उर्वरकों एवं कीटनाशकोंका उपयोग किया जाय। इससे न केवल फसलकी गुणवत्तामें वृद्धि होगी बल्कि उत्पादनमें भी वृद्धि होगी; क्योंकि जैविक कृषिसे भूमिको अतिरिक्त पोषक तत्त्व प्राप्त होंगे। मात्र यूरियापर ही ७०,००० करोड़का सरकारी अनुदान प्रतिवर्ष दिया जा रहा है। रासायनिक खाद, कीटनाशकका इस्तेमाल कम होनेपर उसी मात्रामें अनुदानकी राशिकी बचत होगी तथा उस धनराशिका उपयोग गोवंशके रखरखाव एवं जैविक कृषिके विकासहेतु किया जा सकता है। इस प्रकार पाँच वर्षोंमें सम्पूर्ण कृषि गो-आधारित बनायी जा सकती है। तत्पश्चात् भी यदि कोई किसान रासायनिक खाद, कीटनाशक इस्तेमाल करना चाहता है तो उसपर सरकारकी ओरसे कोई अनुदान न दिया जाय।

उपरोक्त दोनों कड़े निर्णयोंके क्रियान्वयनहेतु काफी प्रचार-प्रसार, प्रशिक्षण, अवस्थापना, सृजन, अनुसन्धान एवं विकासकी आवश्यकता होगी, लेकिन इसके लिये धनराशिकी कमी आड़े नहीं आयेगी; क्योंकि रासायनिक खादों और कीटनाशकोंपर दिये जा रहे अनुदानमें काफी बचत होगी।

तीसरी आवश्यकता सरकारद्वारा बैलोंका उपयोग बढ़ानेकी है। उन्नत बैलचालित यन्त्रों यथा—बैलचालित ट्रैक्टर, सिंचाई पम्प, जनरेटर, आटाचक्की, कोल्हू, बैलगाड़ियों आदिके विकास एवं वितरणकी आवश्यकता है। औसतन एक बैलकी कर्षण शक्ति ५००वाट मानी जा सकती है। इस प्रकार देशमें उपलब्ध लगभग १० करोड़ नर गोवंशकी शक्ति ५०,००० मेगावाट होती है, जिसका सदुपयोग नहीं किया जा रहा है। उन्नत बैलचालित यन्त्रोंके विकास एवं उपयोगसे न केवल बैलोंकी कार्यक्षमता बढ़ती है, बल्कि वे अपने जीवनकी अधिकांश अवधिमें कार्यशील भी रहते हैं। डीजल ट्रैक्टर एवं अन्य उपकरणोंपर सरकारी अनुदानको कम करते हुए बैलचालित यन्त्रोंपर अनुदानकी व्यवस्था की जानी चाहिये तथा उनके व्यापक स्तरपर वितरणके लक्ष्य प्रतिवर्ष निर्धारित किये जाने चाहिये। कम दूरीकी सरकारी माल ढुलाईको भी बैलगाड़ियोंहेतु आरक्षित कर देना चाहिये।

चौथी बड़ी आवश्यकता सरकारद्वारा गोवंशके गोबर एवं गोमूत्रके व्यापक स्तरपर सदुपयोगको सुनिश्चित करानेकी है। गो-आधारित जैविक कृषिमें इनके उपयोगके अतिरिक्त इनसे विभिन्न औषधियों एवं अन्य कई जीवनोपयोगी वस्तुओंका निर्माण किया जा सकता है। देशी गायके पंचगव्य (गोबर, गोमूत्र, दूध, दही एवं घी)-से निर्मित औषधियोंकी प्रामाणिकता सिद्ध की जा चुकी है कि वे कैंसर, ब्लडप्रेशर, शुगर, गुर्दा, यकृत्, फेफड़ों, आमाशयसहित पूरे शरीरके विभिन्न रोगोंमें काफी लाभकारी हैं। पंचगव्यसे न केवल शरीरमें रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है, बल्कि उसके साथ ली जानेवाली अन्य औषधियोंका प्रभाव भी कहीं अधिक बढ़ जाता है। सरकारी आयुर्वेदिक चिकित्सकोंद्वारा अधिकाधिक पंचगव्य औषधियोंसे उपचार करना चाहिये तथा उनके व्यापक स्तरपर निर्माण एवं वितरणकी व्यवस्था सुनिश्चित की जानी चाहिये।

गोबर, गोमूत्रका उपयोग, साबुन, धूप, अगरबत्ती, फिनाइल, मच्छर भगानेकी क्वायल, कागज, गत्ता, टाइल आदिके बनानेहेतु भी किया जा सकता है। गोबरमें थोड़ी मात्रामें बाईंडर मिलाकर गमले एवं लट्ठे बनाये जा सकते हैं। लट्ठोंका लकड़ीकी भाँति उपयोग श्मशानघाटपर शव-दाहहेतु तथा सर्दियोंमें अलाव जलानेहेतु किया जा सकता है। सरकारी उपयोगहेतु अधिक-से-अधिक पंचगव्यसे निर्मित वस्तुओंका क्रय किया जाना चाहिये। बड़े बायोगैस प्लान्ट स्थापितकर उनसे सीएनजी एवं विद्युत्के उत्पादनको भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।

पाँचवीं बड़ी आवश्यकता सरकारद्वारा व्यापक

स्तरपर सस्ते चारे और भूसेकी उपलब्धता सुनिश्चित करानेकी है। गोचर भूमिको अवैध कब्जेसे मुक्त कराना, उन्नत चारा प्रजातियोंका रोपण, वनक्षेत्रोंको चरानेके लिये उदारतासे खोला जाना, संयुक्त वन-प्रबन्धन बढ़ाया जाना ताकि वनक्षेत्रमें भी स्थानीय निवासी चारा उत्पादन कर सकें और पशुओंको चरा सकें। चारा प्रजातिके वृक्षोंका वृक्षारोपण राजमार्गों, नदियों, नहरोंके किनारे खाली भूमियोंपर चारा विकास आदि व्यापक स्तरपर किया जाना चाहिये। चारा बैंकोंकी स्थापना कृषि अवशेषोंका संग्रहण एवं पशु-आहारहेतु उपयोग, साइलेज आदिकी भी बड़े पैमानेपर आवश्यकता है। यथा आवश्यकता भूसेका औद्योगिक उपयोग भी नियन्त्रित किया जा सकता है।

देशमें खाद्यान्नकी प्रचुर उपलब्धता है। कृषि-उत्पादनमें वृद्धिके कारण बहुधा खाद्यान्नका कुछ अंश प्रतिवर्ष खराब हो रहा है। खराब हुए खाद्यान्नको कैटल फीड ग्रेडकर बेचा जाता है। यदि शुरूमें ही खाद्यान्नके उस अंशको पशुओंके लिये उपलब्ध करा दिया जाय तो उसके भण्डारणपर भी खर्चा नहीं होगा तथा पशुओंके लिये भी पौष्टिक आहारकी उपलब्धता बढ़ेगी। खाद्यान्नकी ऐसी प्रजातियोंको उपजाया जाना चाहिये, जिनमें तना लम्बा हो ताकि अधिक मात्रामें भूसेका उत्पादन हो सके। मनुष्य और पशुके भोजनकी आवश्यकताको समेकित रूपसे दृष्टिगत रखनेसे हम खाद्यान्न एवं भूसेके बीच पर्याप्त सन्तुलन बना सकेंगे। किसानको अधिक कृषि उत्पादन होनेके फलस्वरूप दाम कम मिलनेकी तथा पशुओंके लिये भूसा-चारा अधिक कीमतपर खरीदनेकी व्यथा भी कम होगी तथा सभीके लिये समुचित मात्रामें आहारकी उपलब्धता रहेगी। अधिक खाद्यान्नके भण्डारणकी आवश्यकता, भण्डारणपर होनेवाले व्यय तथा खाद्यान्नके खराब होनेकी समस्यामें भी कमी आयेगी।

छठी आवश्यकता गोवंशके रखरखाव एवं उपयोगहेतु कार्यरत निजी क्षेत्रकी संस्थाओंको समुचित सहायता प्रदान करनेकी है। अवनत वनभूमियों और ऊसर-बंजर भूमियोंको ऐसी संस्थाओंको गोवंश आश्रय-स्थल विकसित करनेहेतु, चारागाह विकासहेतु उदारतासे उपलब्ध कराना चाहिये। यदि कहीं स्वामित्व-हस्तान्तरणमें कठिनाई हो तो प्रबन्धनके अनुबन्धके आधारपर भूमिको संस्थाको दिया जा सकता है। इससे उन भूमियोंका सदुपयोग तो होगा ही, गोवंशके गोबर एवं गोमूत्रसे वह पुनः उपजाऊ हो जायगी। इन संस्थाओंको याचककी दृष्टिसे नहीं अपितु सरकार अथवा स्थानीय निकायके सहयोगीकी दृष्टिसे देखकर वित्तीय एवं तकनीकी सहयोग भी उपलब्ध कराया जाना चाहिये।

उपरोक्त सभी बिन्दुओंपर अभीतक सघन रूपसे कार्य नहीं हुआ है। सरकारकी ओरसे यह बड़ी पहल करनेकी आवश्यकता है कि पाँच वर्षोंके अन्दर प्रत्येक वर्ष सटीक लक्ष्य निर्धारितकर सघन कार्यक्रम चलाकर उपर्युक्त विषयोंपर प्रभावी कार्रवाई की जाय ताकि गोवंश किसानके लिये उपयोगी बन सके। तब किसान गोवंशको कसाई या तस्करको नहीं बेचेगा, बहुत बूढ़ा हो जानेपर भी उसे कृतज्ञताके भावसे घरपर ही रखेगा अथवा गोशाला भेज देगा। दोनों ही स्थानोंपर उसके गोबर-गोमूत्रके सदुपयोगसे उसके रखरखावका खर्चा निकल सकेगा।

वस्तुतः भारतीय गोवंश मानवजातिके लिये प्रभुकी अनुपम देन है। उसके दूध, दही एवं घीका सेवन मनुष्यके ओज और तेजकी वृद्धि करता है। बुद्धिको कुशाग्र बनाता है तथा शरीरको स्फूर्ति एवं सात्त्विक ऊर्जा प्रदान करता है। उसका गोबर, गोमूत्र औषधीय गुणोंसे युक्त है तथा जैविक कृषिका आधार है।

इस प्रकार गोवंशके समुचित रखरखाव, उपयोग, संरक्षण एवं संवर्धनहेतु सरकारकी निश्चयपूर्ण सटीक कार्यवाहीसे किसान भी समृद्ध होगा तथा सामान्य जनके स्वास्थ्य, पर्यावरण, आनन्द, अर्थव्यवस्था, सामाजिक शान्ति एवं समरसतापर भी उत्कृष्ट प्रभाव पड़ेगा।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

एक ही परमेश्वरके अनेक स्वरूप हैं

प्रिय महोदय! आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

(१) महादेवजी, पार्वतीजी अथवा गणेशजी अनादिसिद्ध देव हैं। एक ही परमेश्वर सृष्टि, पालन और संहारके लिये विभिन्न गुणोंको आश्रय देकर विभिन्न नाम तथा रूपोंसे प्रसिद्ध हो रहे हैं। सृष्टिके रचयिताको ब्रह्माजी, पालकको भगवान् विष्णु तथा संहार-शक्तिको रुद्र या महादेव कहते हैं। जैसे परमेश्वर अनादि, अनन्त एवं सनातन हैं, वैसे ही ये महादेवजी आदि भी हैं। इनका न कभी जन्म होता है, न मृत्यु—ये सदा रहते हैं। जैसे अग्निके परमाणु सर्वत्र व्याप्त हैं। इस रूपमें अग्नि सदा मौजूद है। यह उसका अव्यक्त स्वरूप है। वही अग्नितत्त्व सूर्यके रूपमें हमें प्रत्यक्ष दीख पड़ता है तथा वही आगके रूपमें, दीपकके रूपमें घर-घरमें प्रज्वलित हो प्रकट दिखायी देता है। ग्रह, नक्षत्र, तारे आदि सभी वस्तुत: एक ही ज्योतिर्मय महातत्त्वके विभिन्न स्वरूप हैं। इसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य, काली, गणेश आदि एक ही परमात्माके तेजोमय स्वरूप हैं। जैसे आग बुझती है और जलती है, परंतु उसका अभाव नहीं होता, उसी प्रकार उक्त सभी स्वरूपोंका जगत्में आविर्भाव और तिरोभाव होता है, परंतु उनका अभाव कभी नहीं होता। इसीलिये उनके जन्म आदिकी कथा एक लीलामात्र है। आविर्भाव और तिरोभाव कभी गिने नहीं जा सकते। महासागरमें अबतक कितनी लहरें उठीं और विलीन हुईं, इसे कौन बता सकता है? ये सब सनातन होते हुए भी लीलाके लिये प्रादुर्भूत और तिरोभूत होते रहते हैं। इनके जन्म-मरण नहीं होते। ये सदा सत्य हैं और भक्तजनोंको इनके दर्शन सदा ही हो सकते हैं।

श्रीमहादेवजी तो अजन्मा हैं ही। इनकी आह्लादिनी-शक्ति महादेवी भी उनसे अलग नहीं होतीं। वे लीलाके लिये कभी दक्षकन्या सती होकर अपने प्रभुकी सेवामें रहती हैं और कभी गिरिराजनन्दिनी पार्वती होकर अपने प्रियतमकी आराधना करती हैं। प्रत्येक कल्पमें ऐसा होता है; इसलिये ये सती और पार्वती भी अनादि हैं, न जाने कबसे इनका प्रादुर्भाव और तिरोभावका क्रम चल रहा है? कौन कह सकता है? गणेशजी भी परमात्माके एक स्वरूप हैं। विघ्नहरण, मंगलकरण इनका कार्य है। किसी समय पार्वतीजी जब इनका स्मरण करती हैं, तब ये अव्यक्तसे व्यक्त हो जाते हैं; उनके पुत्ररूपमें साकार होकर लीलाएँ करने लगते हैं। इनके प्रादुर्भावका क्रम भी अनादि है। शिव-पार्वतीके विवाहकालमें उन्हीं अनादिसिद्ध विघ्नहरण मंगलकरण गणेशतत्त्वका पूजन होता है। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी लोगोंकी शंकाका निवारण करते हुए कहा है—

मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि।
कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि॥

(२) एक समय शुम्भ-निशुम्भके अत्याचारसे पीड़ित देवतालोग भगवती विष्णुमायाकी स्तुति करने लगे। स्तुतिके अन्तमें भगवान्की योगमायास्वरूपा पार्वतीजी उनके सामने प्रकट हुईं। उन्होंने अपने-आप ही उनसे प्रश्न किया—'**भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का।**' आपलोग यहाँ किसकी स्तुति करते हैं? पार्वतीजीके शरीरसे एक तेजोमयी देवीने तत्काल प्रकट होकर उत्तर दिया—'ये लोग मेरी ही स्तुति करते हैं।' वह देवी शरीरकोशसे प्रकट हुई थी, इसीलिये 'कौशिकी' कहलायी। उसीको 'अष्टभुजा सरस्वतीजी' भी कहते हैं। कौशिकीके निकल जानेके बाद पार्वतीका रंग काला पड़ गया और वे हिमाचलपर 'काली' के नामसे प्रकट हुईं। यह कथा मार्कण्डेयपुराणमें है। इस प्रकार यद्यपि पार्वती ही काली, कालिका, गौरी, सरस्वती हैं, काली और गौरी दोनों उन्हींके नाम हैं; तथापि जो महाकाली महादेवजीके वक्षपर पैर रखे हुए दिखायी देती हैं, वे दूसरी ही हैं। तत्त्वत: या स्वरूपत: सब एक हैं, तथापि लीलाके लिये कुछ भेद स्वीकार किया जाता है। कहते हैं—एक समय किसी असुरका संहार करके महादेवी दुर्गा बड़े क्रोधमें भर गयीं। उस समय उनके क्रोधको शान्त करनेमें कोई समर्थ न हो सका, ऐसा जान पड़ता था कि कालीजी समस्त जगत्का संहार कर डालेंगी। वे उस समय विकराल महाकालीके रूपमें उपस्थित थीं। किसी देवताका भी उनके सामने जानेका साहस नहीं होता था, तब महादेवजीने एक युक्ति सोची। वे उनके सामने मुर्देकी तरह लेट गये। महाकालीजी

क्रोधमें बढ़ी आ रही थीं। उनकी छातीपर पैर रखते ही महाकालीजीका ध्यान भंग हुआ। वे क्रोधका आवेश कम करके नीचे देखने लगीं। देखा तो शंकरजी नीचे दबे हैं। यह देख उनके मनमें संकोचका उदय हुआ, वे लज्जासे जीभ निकालकर पीछे हट गयीं। उसी स्वरूपकी झाँकी देखनेमें आती है। मुण्डमाला असुरोंके मुण्डोंसे बनी है। उसमें कितने मुण्ड हैं, इसकी गिनती नहीं।

(३) महादेवजीके गलेमें जो मुण्डमाला है, उसकी भी कहीं कोई गणना नहीं दी गयी है। शेष भगवत्कृपा।

(२)

केवल भगवान्‌पर भरोसा कीजिये

प्रिय महोदय! मेरी तो यही राय है कि आपको दूसरोंकी ओर ताकना छोड़कर, 'दूसरोंकी कृपासे आपका कार्य हो जायगा' इस आशाको त्यागकर, सर्वशक्तिमान्, अपने सहज-सुहृद् भगवान्‌पर भरोसा करके अपना साधारण काम करते रहना चाहिये। भगवान्‌की इच्छा होगी तो उसीमेंसे आपका कार्य सफल हो जायगा। अपने-आप कोई-न-कोई ऐसी योजना बन जायगी जो आपके अभावोंको मिटा देगी। मैंने देखा है—बड़े-बड़े कार्य करनेपर भी और 'बस, बड़ी सफलता हो गयी'—ऐसा एक बार सामने दीख पड़नेपर भी परिणाममें असफलता होती है, उलटा परिणाम होता है और छोटे-से कार्यसे भी विलक्षण रीतिसे उद्देश्य सफल हो जाता है। कुछ ही दिनों पहलेकी बात है—एक परिवार बहुत चिन्तित था। उसके लिये उसके किसी सम्बन्धीने बड़ा व्यापार करवाया, खूब प्रयत्न किया; परंतु उसमें सफलता नहीं मिली। इसलिये वह काम बन्द कर दिया गया। वह परिवार अपने पुराने छोटेसे व्यापारमें लगा रहा। उसने भगवान्‌को पुकारा और उसी छोटे-से व्यापारमेंसे ही कोई ऐसी योजना बन गयी कि थोड़े ही दिनोंमें वह परिवार अभावमुक्त होकर पर्याप्त साधन-सम्पन्न हो गया। डाली-पत्तोंको सींचनेसे क्या होगा? जड़में पानी देना चाहिये, जिससे सारे डाली-पत्ते आप ही पनपेंगे और वृक्ष पुष्पित-फलित हो जायगा।

एक बात और है—मनुष्य किसीके पास भी किसी चाहसे यदि जाता है तो वह प्रायः सम्मान नहीं पाता। संसारकी सहानुभूति चाहनेसे या माँगनेसे नहीं मिलती, उसकी ओरसे लापरवाह होनेपर—मुँह मोड़ लेनेपर मिला करती है। इसलिये द्वार-द्वार ठोकर न खाकर एक भगवान्‌का आश्रय लीजिये और उन्हींको पुकारकर अपने मनकी बात सुनाइये। दूसरे किसके सामने हृदय खोलेंगे? कौन आपकी दुःख-कहानी सहानुभूतिके साथ सुनेगा? किसके पास इतना समय और ऐसा हृदय है, जो आपके लिये कुछ करेगा? एक भगवान् ही ऐसे हैं, जो पीड़ितों, दुखियों, अभावग्रस्तों—और जिनको कोई भी नहीं जानता-मानता, कोई भी अपने पास बैठाकर दुःखकी कहानी सुनना नहीं चाहता—उनकी सारी दुःख-गाथा सहानुभूतिसे सुनते हैं, उसे अपनाते हैं, उसकी सहायता करते हैं और उसके अभावोंका नाश करते हैं।

और यदि भगवान् ही चाहते हैं कि आपके अभाव बने रहें या आपकी मानी हुई सम्पत्ति, सुख-सुविधा, मान-इज्जत, संसारके प्रिय आत्मीय और ममताकी वस्तुएँ आपके पास न रहें तो फिर किसीकी खुशामद करनेसे वह कैसे और कहाँसे दे देगा या बचा देगा? आप सच मानिये—संसारकी प्रत्येक वस्तु भगवान्‌की है। आपका शरीर और आप भी भगवान्‌के हैं। जब भगवान् ही अपनी उस वस्तुको यहाँ नहीं रहने देना चाहते, वे ही जब आपकी भाषामें 'दया नहीं करते', उसको यहाँसे उठा लेना चाहते हैं, तब आप माया-मोह करके उसे क्यों पकड़े रखना चाहते हैं? आपको तो वह वस्तु केवल सेवाके लिये सौंपी गयी है, मालिक तो वही हैं, यदि अपनी चीजको वे ले लेना चाहते हैं तो इसमें आपको क्षोभ या विषाद क्यों होना चाहिये? उनकी चीज उनके इच्छानुसार चाहे जैसे, चाहे जहाँ रहे, इसीमें आपको प्रसन्नता होनी चाहिये।

अतएव आप अपने मनकी इच्छा खुले दिलसे भगवान्‌के सामने रख दीजिये और उनसे कहिये कि 'वे जिस तरहसे जिसमें आपका कल्याण समझें, वही करें।' ऐसा न चाहकर यदि आप अपने मनकी ही बात चाहते हों तो भी अनन्य विश्वासपूर्वक केवल उन्हींको पुकारिये। वे या तो आपके मनकी बात कर देंगे या आपके मनसे उस बातको ही निकाल देंगे। और दोनों ही हालतोंमें आपको वे अपना तो लेंगे ही। इसीका फल होगा अचल सुख-शान्तिकी प्राप्ति। शेष भगवत्कृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२०, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ग्रीष्म-ऋतु, ज्येष्ठ-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें २।२५ बजेतक	शुक्र	विशाखा दिनमें ९।५८ बजेतक	८ मई	× × × ×
द्वितीया ,, १२।३४ बजेतक	शनि	अनुराधा ,, ८।५० बजेतक	९ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ११।५० बजेसे, **मूल** दिनमें ८।५० बजेसे।
तृतीया ,, ११।६ बजेतक	रवि	ज्येष्ठा ,, ८।५ बजेतक	१० ,,	**भद्रा** दिनमें ११।६ बजेतक, **धनुराशि** दिनमें ८।५ बजेसे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९।४७ बजे।
चतुर्थी ,, १०।० बजेतक	सोम	मूल ,, ७।४० बजेतक	११ ,,	**कृतिकाका सूर्य** दिनमें ९।४२ बजे, **मूल** दिनमें ७।४० बजेतक।
पंचमी ,, ९।२३ बजेतक	मंगल	पू०षा० ,, ७।४४ बजेतक	१२ ,,	**मकरराशि** दिनमें १।५२ बजेसे।
षष्ठी ,, ९।१४ बजेतक	बुध	उ०षा० ,, ८।१६ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** दिनमें ९।१४ बजेसे रात्रिमें ९।२६ बजेतक।
सप्तमी ,, ९।३९ बजेतक	गुरु	श्रवण ,, ९।२० बजेतक	१४ ,,	**कुम्भराशि** रात्रिमें १०।६ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें १०।६ बजे, **वृष-संक्रान्ति** रात्रिमें ८।५१ बजे, **ग्रीष्मऋतु प्रारम्भ।**
अष्टमी ,, १०।३१ बजेतक	शुक्र	धनिष्ठा ,, १०।५१ बजेतक	१५ ,,	**श्रीशीतलाष्टमीव्रत।**
नवमी ,, ११।५२ बजेतक	शनि	शतभिषा ,, १२।५१ बजेतक	१६ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १२।४४ बजेसे।
दशमी ,, १।३४ बजेतक	रवि	पू०भा० ,, ३।१० बजेतक	१७ ,,	**भद्रा** दिनमें १।३४ बजेतक, **मीनराशि** दिनमें ८।३५ बजेसे।
एकादशी ,, ३।३२ बजेतक	सोम	उ०भा० सायं: ५।४४ बजेतक	१८ ,,	**अचलाएकादशीव्रत** (सबका), **मूल** सायं ५।४४ बजेसे।
द्वादशी सायं ५।३५ बजेतक	मंगल	रेवती रात्रिमें ८।२५ बजेतक	१९ ,,	**मेषराशि** रात्रिमें ८।२५ बजेसे, **पंचक समाप्त** रात्रिमें ८।२५ बजे, **भौमप्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी रात्रिमें ७।१४ बजेतक	बुध	अश्वनी ,, १०।५४ बजेतक	२० ,,	**भद्रा** रात्रिमें ७।१४ बजेसे, **सायन मिथुनका सूर्य** रात्रिमें १०।४७ बजे, **मूल** रात्रिमें १०।५४ बजेतक।
चतुर्दशी ,, ९।१६ बजेतक	गुरु	भरणी ,, १।९ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** दिनमें ८।१४ बजेतक।
अमावस्या ,, १०।३८ बजेतक	शुक्र	कृत्तिका ,, ३।४ बजेतक	२२ ,,	**वृषराशि** प्रात: ७।३८ बजेसे, **अमावस्या, वटसावित्री-व्रत।**

सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२०, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, ज्येष्ठ-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ११।३१ बजेतक	शनि	रोहिणी रात्रिशेष ४।५३ बजेतक	२३ मई	**करवीरव्रत।**
द्वितीया ,, ११।५६ बजेतक	रवि	मृगशिरा अहोरात्र	२४ ,,	**मिथुनराशि** सायं ५।११ बजेसे।
तृतीया ,, ११।४९ बजेतक	सोम	मृगशिरा प्रात: ५।२९ बजेतक	२५ ,,	**रम्भाव्रत, रोहिणीमें सूर्य** प्रात: ७।५ बजे।
चतुर्थी ,, ११।१२ बजेतक	मंगल	आर्द्रा ,, ५।५६ बजेतक	२६ ,,	**भद्रा** दिनमें ११।३० बजेसे रात्रिमें ११।१२ बजेतक, **कर्कराशि** रात्रिमें ११।५४ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ,, १०।६ बजेतक	बुध	पुनर्वसु ,, ५।५४ बजेतक	२७ ,,	× × × ×
षष्ठी ,, ८।३६ बजेतक	गुरु	पुष्य प्रात: ५।२५ बजेतक	२८ ,,	**सिंहराशि** रात्रिशेष ४।३६ बजेसे, **मूल** प्रात: ५।२५ बजेसे।
सप्तमी सायं ६।४६ बजेतक	शुक्र	मघा रात्रिशेष ४।३९ बजेतक	२९ ,,	**भद्रा** सायं ६।४६ बजेसे, **मूल** रात्रिशेष ४।३९ बजेतक।
अष्टमी दिन ४।४० बजेतक	शनि	पू०फा० रात्रिमें २।२ बजेतक	३० ,,	**भद्रा** प्रात: ५।४३ बजेतक।
नवमी ,, २।२० बजेतक	रवि	उ०फा० ,, १२।२७ बजेतक	३१ ,,	**कन्याराशि** प्रात: ७।३८ बजेसे।
दशमी ,, ११।५४ बजेतक	सोम	हस्त ,, १०।४८ बजेतक	१ जून	**भद्रा** रात्रिमें १०।४० बजेसे, **श्रीगंगादशहरा।**
एकादशी ,, ९।२५ बजेतक	मंगल	चित्रा ,, ९।९ बजेतक	२ ,,	**भद्रा** दिनमें ९।२५ बजेतक, **तुलाराशि** दिनमें ९।५९ बजेसे, **निर्जला (भीमसेनी) एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी प्रात: ६।५८ बजेतक	बुध	स्वाती ,, ७।३४ बजेतक	३ ,,	**प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी रात्रिमें २।३१ बजेतक	गुरु	विशाखा सायं ६।९ बजेतक	४ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २।३१ बजेसे, **वृश्चिकराशि** दिनमें१२।३० बजेसे।
पूर्णिमा ,, १२।३९ बजेतक	शुक्र	अनुराधा ,, ४।५९ बजेतक	५ ,,	**भद्रा** दिनमें १।३५ बजेतक, **पूर्णिमा, मूल** सायं ४।५९ बजेसे।

कृपानुभूति

गोमाताकी कृपासे फाँसी टल गयी

पुरानी बात है, पूर्वी नेपालके पहाड़ी प्रदेशमें रहनेवाले दो व्यक्ति थे—जीतबहादुर और नरबहादुर थापा। मजदूरीकी तलाशमें ये दोनों नेपालसे भारतमें चले आये। इन्हें यहाँ लकड़ी काटनेका काम मिल गया। तीन माह काम करके कुछ कमाई कर जब वे दोनों वापस अपने घर लौट रहे थे तो मार्गमें उन्होंने देखा कि तीन-चार मुसलमान एक द्विहायनी गौको रस्सीसे बाँधकर जबरदस्ती घसीटते-पीटते ले जा रहे थे। जीतबहादुरको बड़ी दया आयी। उसने पूछा—'अरे! तुमलोग इस गायको इस तरह कहाँ ले जा रहे हो?' पहले तो उन्होंने यह बात सुनी-अनसुनी कर दी। पीछे एकने जवाब दिया—'हमलोगोंका त्योहार है, इसे कुर्बानी देनेके लिये ले जा रहे हैं। तुझे इससे क्या मतलब?' फिर जीतबहादुरने कहा—'कितनेमें ले आये हो?' उसने कहा—'जितनेमें लायें, तुम्हें इससे क्या?' यह बोलते-बोलते वह गौको पीटते-घसीटते ले जाने लगा। फिर जीतबहादुर आगे जाकर रास्ता रोकते हुए कहने लगा—'नहीं-नहीं इसे छोड़ दो, जितनेमें ले आये हो, उसका दूना रुपया हमसे ले लेना', यह कहते हुए आगे बढ़कर उसने रास्ता रोक लिया।

मुसलमानोंने कहा—'चलो हटो, अपना रास्ता नापो, ज्यादा तकरार करनेसे मार खाओगे।' इस प्रकार वाद-विवाद होते-होते मुसलमानोंने जीतबहादुरको दो-चार लाठी मार दी। उसके सामने अँधेरा छा गया। कुछ क्षणके बाद उसे चेतना हो आयी। इसी समय चारों तरफसे मुसलमानोंने जमा होकर दोनोंको घेर लिया। वे सब मारनेके लिये उद्यत हुए। अब क्या था, जीतबहादुरने अपनी खुखरी निकाली और वह भी उनका मुकाबला करने लगा। उसने खुखरीसे कितनोंको मार डाला, कितने ही घायल हो गये।

इधर नरबहादुर मन-ही-मन विचार कर रहा था कि 'हाय! हमलोग कहाँ आये, कैसी दुर्घटनामें फँस गये, अब क्या करना चाहिये।' उसके पास न खुखरी थी, न लाठी ही। इसी बीचमें फिरसे मुसलमान जुट गये। जीतबहादुर अब भी समरांगणमें निडर होकर डटा था। उसकी सहायताके लिये नरबहादुर भी लड़नेके लिये मैदानमें उतर गया। निहत्था होनेपर भी हिम्मत और साहसके साथ भिड़ गया। गोमाताकी रक्षाके लिये वे दोनों रणबाँकुरे बिलकुल पागलके समान हो गये। उन्होंने क्षणभरमें सभीको खदेड़ डाला। वे दोनों पढ़े-लिखे तो थे नहीं, फिर भी सरल स्वभावके धर्मपरायण थे। गौकी रक्षाके लिये उन्हें अपने जीवनका कोई मोह नहीं था।

समाचार क्षणभरमें आस-पासमें फैल गया। थोड़ी ही देरमें हथियारबन्द पुलिस आ गयी। दोनोंको पकड़कर थाने ले जाया गया। कोर्टमें मुकदमा चला। बेचारे उन दोनोंके पक्षमें कोई बोलनेवाला नहीं था। मजिस्ट्रेटने घटनाका विवरण विलायतके बड़े लाटके पास लिख भेजा। उधरसे जवाबमें जीतबहादुरको फाँसीकी सजा और नरबहादुरको पन्द्रह सालकी कड़ी जेलकी सजा हो गयी। बेचारे दोनों सजा सुनकर निराश और स्तब्ध हो गये। फाँसीकी तारीख तय हो गयी। जीतबहादुरको निर्दिष्ट समयपर जल्लाद फाँसीकी जगह ले गये। गलेमें फाँसीकी रस्सी लगायी गयी, पर फाँसी लगी नहीं। नीचे उतारा गया। कुछ क्षणके बाद अफसरने फिरसे फाँसी लगानेको कहा, फिर भी वैसा ही हुआ। तब आर्डर देनेवाले अफसरने विलायतके बड़े साहबके पास खबर की। उधरसे जवाब आया 'फाँसीका हुक्म एक ही बारके लिये होता है, किसके हुक्मसे दुबारा फाँसी दी गयी? दुबारा फाँसी देनेवालेको ही फाँसी दी जाय'—ऐसा आर्डर आनेपर उस मजिस्ट्रेटको ही फाँसी दे दी गयी।

उस स्थानपर एकत्रित हुए सभी सरकारी अफसर तथा दर्शकगण आश्चर्यचकित हो रहे थे। जज साहबने जीतबहादुरको सम्मानके साथ बुलाकर पूछा—'आपको फाँसी क्यों नहीं लगी? यह बात हमलोगोंको सच-सच बताइये।'

जीतबहादुरने कहा 'यह गौमाताकी कृपा है। जब फाँसीकी रस्सी लगाकर उठायी जाती थी, तब मेरे पाँवोंके नीचे कोई गाय पीठ देकर मुझे ऊपर कर देती थी और रस्सी ढीली हो जाती थी, इसीसे मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ।'

तब उन दोनोंको छुट्टी दे दी गयी। वहाँके हिन्दुओंने धूमधामसे जुलूसके साथ उन्हें बाजारमें घुमाया और ससम्मान विदा किया। दोनों सकुशल घर लौट आये। गाँवके लोगोंने भी खूब प्रशंसा—धन्यवाद देकर सम्मानित किया। अभीतक पूर्वी नेपालके बूढ़े-पुराने लोग इस बातको बड़ी ही श्रद्धा एवं आदरके साथ बताते हैं। **—पं० श्रीधरणीधरजी उपाध्याय**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

ईमानदार पादरी

रेवरेंड आवर एक सच्चे एवं ईमानदार पादरी थे। वे अमेरिकासे भारतमें ईसाई-धर्मका प्रचार करनेके लिये भेजे गये थे। पूना और उसके आस-पास उन्होंने ईसाई-मतका प्रचार किया और कुछ अशिक्षित जनोंको ईसाई बनाया। एक दिन एक पण्डित (ब्राह्मण)-ने उनसे प्रश्न किया कि 'क्या तुमने हिन्दू-धर्मका अध्ययन किया है?' पादरीने उत्तर दिया—'नहीं'। फिर पण्डितने 'आवर' साहबसे कहा कि 'हिन्दू-धर्मकी निन्दा और ईसाई-मतकी प्रशंसा करनेसे पहले आपको हिन्दू-धर्मका अध्ययन तो कर ही लेना चाहिये।' यह बात रेवरेंड आवरको जँच गयी। उन्होंने हिन्दू-धर्मका अध्ययन आरम्भ कर दिया। संस्कृत और मराठी भाषाएँ सीखीं और सन्त एकनाथ, सन्त ज्ञानेश्वर, सन्त तुकाराम आदि सन्त-महात्माओंके साहित्यका निष्पक्ष भावसे अध्ययन किया। इतना ही नहीं, इन महापुरुषोंके जीवन-चरित्र तथा उनके तत्त्वज्ञानको अंग्रेजीमें अनूदितकर प्रकाशित भी किया। जब चार-पाँच ग्रन्थ उन्होंने अंग्रेजीमें प्रकाशित कर दिये तो उनका मन बदल गया और इसके बाद उन्होंने अमेरिकन मिशनको जो पत्र लिखा, वह प्रत्येक सच्चे और ईमानदार ईसाई मिशनरीके लिये ध्यान देनेकी वस्तु है। उनका पत्र था—

'यहाँ भारतमें सैकड़ों ईसा हैं—अर्थात् ईसा-जैसे सन्त हुए हैं। यहाँ ईसाई प्रचारकगण ईसाको बताकर क्या करेंगे? भारतने आजतक सैकड़ों और सहस्रों ईसा उत्पन्न किये हैं और भविष्यमें भी यहाँ अनेक ईसा पैदा होंगे। इसलिये भारतमें ईसाई-मतके प्रचारका कोई प्रयोजन नहीं है। यहाँपर ईसाई-मतका प्रचार-कार्य सर्वथा बन्द कर देना चाहिये। मैं भी भारतमें ईसाई-मतका प्रचार करने ही आया था। यहाँ आकर मैंने यहाँके सन्तोंके ग्रन्थोंका अध्ययन किया है और जान लिया है कि भारतमें तो सत्य-धर्मका अगाध समुद्र है। इसलिये भारतमें कोई ईसाई अपने मतका प्रचार न करे, अपितु यहाँसे सत्य-धर्मका ज्ञान प्राप्त करे।* मैंने ईसाई-मतका प्रचार बन्द किया है और मैं मिशनसे त्यागपत्र देता हूँ। आजके पश्चात् मैं ईसाई-मतका प्रचार नहीं करूँगा। इतना ही नहीं, अपितु अपनी आठ लाखकी सम्पत्ति, जो अमेरिकामें है, उसे मैं पूनाके 'भारतीय इतिहास-संशोधक-मण्डल' को अर्पित करता हूँ। इस धनसे भारतीय सन्त-ग्रन्थोंके अनुवाद छपते रहें और यह कार्य 'भारतीय इतिहास-संशोधक-मण्डल-संस्था' करे। **[हिन्दू विश्व] —जगदम्बाप्रसाद वर्मा**

(२)

आतिथ्य-निर्वाह

बात उन दिनोंकी है, जब हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगे समूचे देशमें व्यापकरूपसे फैल रहे थे। मध्यप्रदेशका जबलपुर नगर भी इससे अछूता नहीं रह गया था। आये दिन दंगे होते। शासनने स्थितिपर नियन्त्रण रखनेके लिये सायंकाल ४ बजेसे प्रातः ८ बजेतककी अवधिके लिये कर्फ्यू लगा दिया था। केवल दिनमें ९ बजेसे ४ बजेतक ही कर्फ्यूमें छूट रहती, वह भी विशेष पुलिस-संरक्षणमें; किंतु इतना होनेपर भी दंगे हो ही जाया करते थे।

एक दिन एक मुसलमान सज्जन श्री ए०एच० खान अपने एक विशेष अतिथिको स्टेशनतक पहुँचाने गये, गाड़ी कुछ विलम्बसे आयी। उनके लौटते-लौटते रास्तेमें ही कर्फ्यू लगनेका समय हो गया। ऐसी दशामें उनका घरतक पहुँचना सरल न था। सामनेसे ऐलान करते पुलिसकी मोटर देख खान साहब भागकर एक गलीमें चले गये। यह स्थान साधारण गली न होकर एक भव्य राजप्रासादका पिछला भाग था, किंतु उन्हें इसका पता तब चला, जब मकान-मालिक वहाँ टहलते दीख पड़े।

खान साहब घबराये हुए तो वैसे ही थे, अब तो उनकी स्थिति 'साँप-छछुंदर' की-सी हो रही थी; क्योंकि मकान-मालिक स्पष्टतया हिन्दू दीख रहे थे, इस कारण उनकी घबराहट और बढ़ गयी। तबतक एक

* मोनियर विलयम्स-जैसे परम प्रसिद्ध ईसाई विद्वान्ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'इंडियन विज्डम' के तीसरे संस्करणकी भूमिकाके अन्तमें ऐसा ही लिखा है।

आवाजने उन्हें सर्वथा भयभीत कर दिया—'तुम कौन हो? यहाँ कैसे, भैया!' खान साहबकी बोलती तो वैसे ही बन्द थी, वे बड़े साहससे हकलाते हुए बोले—'जी···मैं···मैं···थोड़ी ही देरमें चला जाऊँगा।'

संध्या अन्धकारमें विलीन होती जा रही थी। जनवरीका महीना था, कड़ाकेकी ठंडक थी। दाँत कटकटा रहे थे। टहलते-टहलते मकान-मालिकने खान साहबको पुनः सम्बोधित किया—'भैया! अब तो रात हो गयी, स्थिति चिन्ताजनक है, ऐसी दशामें घर जाना खतरेसे खाली नहीं है और फिर यह घर भी तो तुम्हारा ही है, चलो, भोजन करो, विश्राम करो, सबेरे चले जाना।' अमृतभरी वाणीने काम किया। खान साहब वहाँ रुक गये; किंतु रातभर इसी चिन्तामें उनकी आँख नहीं लगी कि 'कहीं ये लोग मुझे पहचान लें और मार ही डालें।'

सबेरा होते ही घरके मालिकने उन्हें जलपान करवाया और कहा—'खान साहब! अब आप जा सकते हैं। मैं तो रातको ही समझ गया था कि आप मुसलमान हैं और इसीलिये मैंने आपको रोक भी लिया था कि रास्तेमें आपपर कोई आक्रमण न कर दे।'

पहले तो खान साहबके पैरों-तलेसे मानो जमीन खिसकी, परंतु मकान-मालिककी उदारता और सहृदयतासे आश्वस्त होते हुए बोले—'आपने मुझे मुसलमान जानकर भी आश्रय दिया, यह आपकी महानता है। आपने यह भी नहीं सोचा कि अवसर पाकर यह मुसलमान वार भी कर सकता है।'

सज्जन बोले, ''हम मेहमानको देवता समझते हैं। क्या देवता भी कभी प्रहार कर सकते हैं? फिर हमारी संस्कृति तो ***'सीय राममय सब जग जानी'*** की सीख देती है।''

खान साहब उन सज्जनके चरणोंमें गिर पड़े और सिसस-सिसककर रोने लगे—'आप देवता हैं, इंसान नहीं।' सज्जनने बड़ी आत्मीयतासे कहा—'मित्र! मैंने तो अपने कर्तव्यका पालन किया है, इससे अधिक कुछ नहीं।' कहते-कहते उनका हृदय भर आया। वे सज्जन थे—मानवताके महान् पुजारी गोलोकवासी सेठ श्रीगोविन्ददासजी।—**इन्दलसिंह भदोरिया**

(३)

सच्चा धन

फ्रांसकी राजधानी पेरिसकी महानगरपालिकाकी एक बैठक (कमेटी)-में प्रश्न चल रहा था—'फ्रांसके अमुक क्षेत्रमें रेलवे लाइन बिछायी जाय या नहीं?'

इस प्रश्नकी चर्चाके पूर्व ही यह बात प्रायः तय हो चुकी थी, उसके नक्शे भी बन चुके थे। कान्ट्रैक्टमें कितना खर्चा आयेगा, यह भी निश्चित हो चुका था, बस केवल उपर्युक्त कमेटीकी स्वीकृतिकी प्रतीक्षा थी।

बैठकके सातों सदस्योंने इसपर खूब विचार किया। उनमें पोल नामक एक सज्जनने कहा कि 'जिस क्षेत्रमें रेलवे लाइन बिछायी जा रही है, उधर जनसंख्या बहुत कम है। इसपर जितना खर्च होगा, उतनी आय न हो पायेगी।' सदस्योंके मत लिये गये। पोलके अतिरिक्त अन्य छः सदस्योंने अपना मत दे दिया था। तीन सदस्योंने 'हाँ' तथा तीन सदस्योंने 'ना' का मत दिया। अब केवल मिस्टर पोलके अभिप्रायपर ही यह निर्णय आधारित था।

मिस्टर पोलसे पूछा गया—'आपका क्या मत है?' उन्होंने उत्तर दिया—'मैंने इस विषयमें खूब विचार किया है। फिर भी दो-चार दिन और विचार कर लें। इसलिये अभी यह प्रस्ताव एक बार विचाराधीन रखा जाय।'

इस बातकी सूचना उस कान्ट्रैक्टरको हो गयी, जो ठेका मिलनेकी आशा लगाये हुए था, उसने सोचा कि 'किनारे लगा हुआ जहाज डूब रहा है, पोल विघ्नरूप हैं। इसलिये उनको घूस देकर अपने पक्षमें ले लेना चाहिये।'

दूसरे दिन सबेरे कान्ट्रैक्टर पोलके घर पहुँचा। पोलका घर देखकर वह आश्चर्यचकित हो गया। उसने वहाँ कोई ऐसी वस्तु नहीं देखी, जिससे पता चलता कि पोल धनी हैं। पोल साहब मामूली आसनपर बैठे हुए कुछ लिख रहे थे। उन्होंने उसका आदर किया और उसे बैठनेको आसन दिया। कान्ट्रैक्टरने उनसे रेलवे लाइनके सम्बन्धमें पूछा और उनका विचार जानना चाहा। पोल साहबने कहा—'यह बात अभी विचाराधीन है।' उसने कहा—'इसमें विचार क्या करना है? रेलवे लाइन बिछानेसे जनताको कितनी सुविधा होगी।' पोल साहबने कहा—'जनताका हित किसमें है, यह देखना हमारा

काम है। जनताका धन बेकार खर्च न हो, यह भी तो हमको देखना है।'

इतनेमें पोलकी पत्नी मेरीने कहा—'आप यहाँ बैठे हैं, तबतक मैं इस मुहल्लेमें जो पुरानी जाकेटोंका नीलाम हो रहा है, उसमेंसे एक जाकेट छोटे बच्चेके लिये ले आती हूँ।'

मेरी कह ही रही थी कि इतनेमें मकान-मालिक मकानके किरायेके लिये तकाजा करने आ पहुँचा। पोल साहबने नम्रतापूर्वक कहा—'मैं एक लेख लिख रहा हूँ, उसका पुरस्कार आयेगा तो वह सीधा ही आपको दे दूँगा। बस दो-चार दिनोंकी देर और हो सकती है।'

कान्ट्रैक्टरने मौका देखकर कहा—'मिस्टर पोल! आप धन बिना इतना कष्ट उठाते हैं, उससे अच्छा तो यह होगा कि आप रेलवे लाइनको बिछानेकी सम्मति दे दीजिये। दो-चार हजारकी बात नहीं, पूरे पचास हजार आपको दे दूँगा। आप मान जाइये और जीवनभर मौज कीजिये।' इतनेमें मेरी जाकेट लेकर आ गयी। कान्ट्रैक्टरने उससे कहा—'बहन! अपने पतिदेवको समझाइये। जब लक्ष्मी टीका करने आये, तब मुँह धोने चले जाना कोई बुद्धिमानीकी बात नहीं है।'

पोल साहबने कहा—'भाई! अपना रुपया जेबमें रखो, भले ही तुम्हारी दृष्टिमें हम गरीब हैं, किंतु हमें उसका दुःख नहीं है। सत्य और प्रामाणिकता ही हमारा धन है। जिस दिन यह लुट जायगा, उस दिन हम वास्तवमें गरीब हो जायँगे, आज नहीं।' कान्ट्रैक्टर अपना-सा मुँह लेकर लौट गया। [**अखण्ड आनन्द**]

(४)

आयुर्वेदिक सलाह

पानी पीनेके नियम—

(१) मन्दाग्नि, पाण्डुरोग, उदररोग, अतिसार, अर्श तथा शोथके रोगियोंको जल कम पीना चाहिये।

(२) भोजनके शुरूमें और अन्तमें जल नहीं पीना चाहिये। भोजन करते समय बीच-बीचमें जलको लें।

(३) थकावट होनेपर, उलटी आनेपर, प्यास अधिक लगी होनेपर, शरीरमें जलन होनेपर, नकसीर फूटनेपर, चक्कर आनेपर शीतल जल पीना चाहिये।

(४) उबालकर ठण्डा किया गया पानी स्रोतोंको शुद्ध करता है और पैत्तिक रोगोंको शान्त करता है, वही जल बासी होनेपर त्रिदोषकारक होता है।

(५) वर्षा-ऋतुमें नदीका जल और अन्तरिक्षका जल अपथ्य होता है।

(६) गलेका रोग, हिचकी, वातरोग, कफरोग, नवज्वर, कास, पीनस, श्वास, पार्श्वशूलमें गरम पानी पीना चाहिये।

(७) नारियलका पानी पीनेसे प्यास शान्त होती है, वात-पित्तरोग शान्त होते हैं, भूख बढ़ती है, बस्तिकी शुद्धि होती है।

इन वस्तुओंको साथमें मिलाकर न खायें—

(१) खट्टे फलोंको दूधके साथ न लें।

(२) कुलथी, सेम और मोठ आदिकी दालको दूधके साथ न लें।

(३) उड़दकी दालके साथ मूली नहीं खानी चाहिये।

(४) मट्ठेके साथ केलेको न खायें।

(५) मधु, घृतको समान मात्रामें मिलाकर न खायें।

(६) खीर खानेके बाद सत्तू नहीं पीना चाहिये।

(७) सलाद खाकर दूध नहीं पीना चाहिये।

भोजन करते समय रखें ध्यान—

(१) भोजन करते समय ईख, केला, नारियल, आम, मोदक आदिको भोजनके प्रारम्भमें लेना चाहिये।

(२) खट्टे एवं नमकीन पदार्थोंको भोजनके मध्यमें लेना चाहिये।

(३) हलके, रूखे, कड़वे एवं तीखे पदार्थ भोजनके अन्तमें खाना चाहिये।

(४) गेहूँ, जौ, दही तथा शहदका सेवन करनेके उपरान्त शीतल जल पीना चाहिये।

(५) पिसे हुए अन्नसे बनी वस्तुओंका सेवन करनेके उपरान्त गर्म पानी पीना चाहिये।

(६) शाक, मूँग, उड़दकी दालसे निर्मित वस्तुओंके सेवनके बाद दहीका पानी अथवा मट्ठा लेना चाहिये।

(७) मोटे व्यक्तियोंको भोजनेके बाद शहदमें ताजा जल मिलाकर पीना चाहिये।

—प्रो० अनूप कुमार गक्खड़

मनन करने योग्य

मृत्युपर वश नहीं

बात है, तेरह सौ वर्षसे भी अधिक पहलेकी। रत्नोंका व्यापार करनेवाला एक जौहरी था। व्यवसायकी दृष्टिसे वह प्रख्यात रोम नगरमें गया और वहाँके मन्त्रीसे मिला। मन्त्रीने उसका स्वागत किया। मन्त्रीके अनुरोधसे जौहरी घोड़ेपर सवार होकर भ्रमणार्थ नगरके बाहर गया। कुछ दूर जानेपर सघन वन मिला। वहाँ उसने देखा मणि-मुक्ताओं एवं मूल्यवान् रत्नोंसे सजा हुआ एक मण्डप है और मण्डपके आगे सुसज्जित सैनिकदल चारों ओर घूमकर प्रदक्षिणा कर रहा है। प्रदक्षिणाके बाद सैनिकदलने रोमन भाषामें कुछ कहा और वह एक ओर चला गया।

इसके अनन्तर उज्ज्वल परिधान पहने वृद्धोंका समूह आया। उसने भी वैसा ही किया। इसके बाद चार सौ पण्डित आये। उन्होंने भी मण्डपकी प्रदक्षिणा की और कुछ बोलकर चले गये। इसके अनन्तर दो सौ रूपवती युवतियाँ मणि-मुक्ताओंसे भरे थाल लिये आयीं और वे भी प्रदक्षिणाकर कुछ बोलकर चली गयीं। इसके बाद मुख्यमन्त्रीके साथ सम्राट्ने प्रवेश किया और वे भी उसी प्रकार वापस चले गये।

जौहरी चकित था। वह कुछ भी नहीं समझ पा रहा था कि यह क्या हो रहा है। उसने अपने मित्र मन्त्रीसे पूछा। मन्त्रीने बताया—सम्राट्के धन-वैभवकी सीमा नहीं। किंतु उनके एक ही पुत्र था। भरी जवानीमें चल बसा। यहाँ उसकी कब्र है। प्रतिवर्ष सम्राट् अपने सैनिकों तथा पारिवारिक व्यक्तियोंके साथ बालकके मृत्यु-दिवसपर आते हैं और जो कुछ करते हैं, वह तुमने देखा ही है। सैनिकोंने कहा था—'हे राजकुमार! भूतलपर कोई भी अमित शक्ति होती तो उसका ध्वंसकर हम तुम्हें निश्चय ही अपने पास ले आते, पर मृत्युपर अपना कोई वश नहीं। हम सर्वथा विवश थे, इसी कारण तुम्हारी रक्षा नहीं कर सके।'

वृद्धसमुदायने कहा था—'वत्स! यदि हमारी आशीषमें इतनी शक्ति होती तो इस प्रकार धरतीमें तुम्हें सोते हम नहीं देख सकते, पर कराल कालके सम्मुख हमारी आशीषकी एक नहीं चल पाती।'

पण्डितोंने दुखी मनसे कहा—'राजकुमार! ज्ञान-विज्ञान अथवा पाण्डित्यसे तुम्हारा जीवन सुरक्षित रह पाता तो हम तुम्हें जाने नहीं देते, पर मृत्युपर हमारा कोई वश नहीं।'

सौन्दर्य-पुत्तलिकाओंने दुखी होकर कहा था—'अन्नदाता! धन-सम्पत्ति अथवा रूप-लावण्य-यौवनसे हम तुम्हारी रक्षा कर सकतीं तो अपनी बलि दे देतीं, पर जीवन-मरणकी नियामिका शक्तिमें अपना कोई वश नहीं। वहाँ धन-सम्पत्ति, रूप-लावण्य-यौवनका कोई मूल्य नहीं।'

अन्तमें सम्राट्ने कहा था—'प्राणप्रिय पुत्र! अमित बल-सम्पन्न सैनिक, तपोनिधि वयोवृद्ध-समुदाय, ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न विद्वत्-समुदाय और रूप-लावण्य-यौवन-सम्पन्न कोमलांगियाँ—जगत्की सभी वस्तु तो मैं यहाँ ले आया, किंतु जो कुछ हो गया है, उसे मिटानेकी सामर्थ्य तेरे इस पितामें ही नहीं, विश्वकी सम्पूर्ण शक्तिमें भी नहीं है। वह शक्ति अद्भुत है।'

मन्त्रीकी इन बातोंको सुनकर जौहरीका हृदय अशान्त हो गया। संसार उन्हें जैसे काटने दौड़ रहा था। व्यवसाय आदिका सारा काम छोड़कर वे बसरा भागे और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि 'जबतक मेरे काम-क्रोधादि विकार सर्वथा नहीं मिट जायँगे, तबतक मैं जगत्के किसी कार्यमें सम्मिलित नहीं होऊँगा। न कभी हँसूँगा और न मौज-शौक कर सकूँगा।' उसी समयसे वे प्रभु-स्मरणमें लग गये। **—श्रीशिवनाथजी दुबे**